

MISSION MEDITATION

Established by :

Enlightened Mystic Gurumaiya Dr. Hareshwarideviji

MAUN MANDIR

(A place for silence)

at. & po. Chapad, dist. Vadodara, Gujarat, INDIA

Ph. +91 9913153609, 7285085733

ॐ सर्वात्मने नमः

ध्यान एक महामृत्यु

पंचतत्व और मृत्यु दर्शन की विधियों के आधार पर 12 विधियाँ

ध्यान : एक नई दिशा

भाग-4

गुरूमैया डॉ. हरेश्वरीदेवीजी

प्रबुद्ध रहस्यदर्शी एवं ध्यान मार्गदर्शक

पृथ्वीतत्व ध्यान

प्रिय साधको !

कितने रंग हैं माटी के ! काला, पीला, सफेद, लाल। आपने ध्यान से देखा है कभी ? अगर गौर से देखेंगे तो पता चलेगा कि जितने रंग मिट्टी के हैं, पृथ्वी पर उतने ही रंगों के मनुष्य हैं, थोड़े बहुत फर्क के साथ।

किसी भी जाति प्रजाति (मनुष्य और वृक्षादि) के शरीर का ढांचा मिट्टी से बना है। मिट्टी की वजह से वह आकार प्राप्त करता है। मिट्टी के कारण वह आकार विशेष रूप से दृश्यमान बनता है। मिट्टी के बल के कारण वह ढांचा खड़ा रह सकता है। अग्नि, वायु, आकाश, या जल चारों तत्व होते हुए भी उसके साथ मिट्टी की घनता के मिश्रण का संयोग नहीं होता तो आप ही सचिए कि शरीरिक ढांचा अस्तित्व में कैसे आ सकता ?

कुदरत के लिए भी इस ब्रह्मांड नाटक को रचने के लिए मिट्टी अनिवार्य है। मिट्टी जगत का परम और आखिरी सत्य है। इसी मिट्टी को हमारे वेद पृथ्वी तत्व कहते हैं। और पंच महाभूत का एक प्रमुख तत्व भी है।

मनुष्य देह में पृथ्वी तत्व और जल तत्व सबसे ज्यादा है। जल और मिट्टी का आदि अनादि से गहन नाता है। मिट्टी और जल के संयोग से अन्न उत्पन्न होता है। अन्न से शरीर की उत्पत्ति और विकास है। इस विकास के बिना, इस शरीर के बिना परमात्मा का उसमें सूक्ष्म रूप से प्रवेश करना असंभव है। इसीलिए कई संतों ने माटी का महिमा गान भी किया है।

अगर आप चाहें तो इस माटी की धारणा को आधार बनाकर, ध्यान में उतरकर परम सत्य को प्राप्त कर सकते हो।

प्रिय साधको !

सबसे पहले ध्यान दीजिए पृथ्वी तत्व ध्यान विधान पर। माटी सुंदर भी है और असुंदर भी। योग्य संग से मिट्टी और सुंदर बन जाती है। और कुसंग से गंदगी बन जाती है। संत तुलसीदास ने मानस में कहा है –

'गगन चढे रज पवन प्रसंगा, किचई मिलई नीच जल संगा।'

एक ही मिट्टी के विविध खिलौने और बर्तन बनाकर उसे जब नए नए रंग रूप दिए जाते हैं तब साधारण मिट्टी निखर उठती है। वह और आकर्षित करती है। उपयोगी भी बनती है। परंतु वही मिट्टी जब गंदे पानी के साथ मिल जाती है तब बदसूरत लगती है। उसे देखकर भी मनुष्य को घिन आती है।

वास्तव में तो दोनों मिट्टी है। फर्क सिर्फ है आकार, प्रकार, स्थान और स्थिति मात्र का। जरा समझने की कोशिष करना ! ये सारी बातें मैं मनुष्य के संदर्भ में कह रही हूँ, केवल माटी के संदर्भ में नहीं।

वैसे तो मनुष्य शरीर हाड–मांस और रक्त का ढेर ही है जो दुर्गंध से भरा है। परंतु उस ढेर को परमात्मा ने आकार, प्रकार, रंग और रूप देकर उपरांत उसमें प्राण फूंककर आपको एक चलते फिरते अद्भुत खिलौने जैसे बना दिए हैं। इतना ही नहीं परंतु मानवखिलौने को अकेला न लगे इसलिए अन्य अकार प्रकार के भी असंख्य खिलौने और भांति भांति के खेल भी दे दिए। और कहा कि खेल लो कुछ देर के लिए। आप आनंदित हो लो मेरे द्वारा, मैं आपके साथ हूँ चैतन्य रूप में। जैसे शाला–महाशाला में शिक्षक पढ़ाई के साथ साथ बच्चों के मनोरंजन के लिए खेल कूद का पीरियड भी दे देते हैं, ठीक इसी तरह।

परंतु मनुष्य भूल गया पढ़ाई को, सत्य को, परमात्मा को, इस दुनियां में खेलते खेलते मनुष्य खेल जैसा बन गया। जिसे ऋषि माया कहते हैं। मनुष्य सत्य को भूलकर लिप्त हो गया नाटक में, असत्य में, माया में।

एक अर्थ में वह शरीर सम्मोहित हो गया, नार्सीसस की भांति। मैंने सुना है कि नार्सीसस बहुत सुंदर था। एक बार जल में अपना चेहरा देखा, अपने ही रूप से वह इतना सम्मोहित हो गया कि फिर वहाँ से खड़ा ही नहीं हुआ और अपने ही प्रतिबिम्ब को देखते देखते खत्म हो गया। नार्सीसस को अगर सही ध्यान विधि का बोध होता तो वह अपनी ही मिट्टी के सौन्दर्य को देखकर ज्ञान को उपलब्ध हो सकता था। उसमें क्षमता भी थी स्थिर होने की, बैठने की। परंतु ग़लती इतनी ही हो गई कि स्वयं में सत्य का दर्शन करने की जगह उसने सिर्फ छाया को पकड़ा। प्रतिबिम्ब को देखता रहा। इस घटना के बाद वैज्ञानिकों ने केवल अपने ही रूप के प्रति मोहित होने वालों को एक विशेष वर्ग में रखा। और ऐसे लोग आज भी नार्सीसस पर्सनालिटी के रूप से जाने जाते हैं।

मैं कहती हूँ कि ज्यादातर लोग नार्सीसस पर्सनालिटी से पीड़ीत हैं। वे केवल स्थूल रूप से बाध्य हो जाते हैं। सूक्ष्म तक नहीं पहुंच पाते।

ऐसा सम्मोहन घातक है।

स्वमनोसम्मोहन से घिरा हुआ मनुष्य चलते फिरते दिखाई देते हुए भी मूर्छा में जी लेता है जिंदगी भर। और मूर्छा में ही मृत्यु की शरण होता है। ऐसा क्यों ?

क्योंकि माटी के खेल में वह ऐसा फंसा कि सत्य को चाहना भूल गया। माटी की आसक्ति ने उसको आत्मसत्ता से दूर कर दिया।

मनुष्य चाहे तो माटी के देह को आधार बनाकर पार उतर सकता है। माटी के माध्यम से पा सकता है अपने मालिक को। इसी माटी के जरिए साधना की नाव में चढ़कर पहुँच सकता है अंतिम किनारे तक परंतु पतानहीं मनुष्य को क्या हो गया है! वह सबकुछ विपरीत करता जाता है। क्यों ? क्योंकि मूर्छित है।

आप किसे कहेंगे जागा हुआ मनुष्य ? जिसने जान लिया कि मेरा शरीर तो केवल माटी की एक मढूली है। जिसमें मैं ठहरा हूँ, कुछ समय के लिए। परंतु मैं मढूली नहीं हूँ – जिसने इस बात का स्मरण रखा, वह तैर गया।

प्यारे साधको!

हम सब चमड़ी के तंबू में कुछ दिन के लिए डेरा डालकर इस धरती पर रुके हैं। इस सत्य को समझकर परम उद्देश्य के साथ जिसने जी लिए वह उतर गया पार। जिसने उद्देश्य को नहीं जाना उसका डेरा वक्त आने पर ढल गया। तंबू की छाया तो सबको मिलती है परंतु उसका इस्तेमाल कुछ अलग ढंग से जो करता रहा वह चूक गया।

इस मिट्टी की मढ़ैया में रहते हुए भी मुक्त हो जाने की विधियाँ दी हैं हमारे वेदों ने, शास्त्रों ने। वे हैं, ध्यान साधना, भक्ति, उपासना कई सारे मार्ग खुले हैं। परंतु मेरा अनुभव कहता है कि ध्यान शीघ्र परिणामदायी है। क्योंकि ध्यानमार्ग में आप अपने पर ही निर्भर हैं। पूरा पूरा आधार आपके ऊपर ही है।

ध्यान में भक्त और भगवान की धारणा भिन्न भिन्न नहीं रहती। आपको बाहर से किसी भी भगवान की मदद नहीं मांगनी पड़ती है। ध्यान आत्माराधन है। पूजा, प्रार्थना, भोग, प्रसाद कुछ नहीं करना पड़ता है ध्यान में। इस मार्ग में ना तो आपको अन्य साधनों पर आधार रखना पड़ता है, ना किसी की प्रतीक्षा करनी है।

मैं कहूंगी कि ध्यान है मिट्टी की मढ़ैया में बैठे परमात्मा के साथ सीधी मुलाकात। सीधा संवाद, सीधा साक्षात्कार और वह भी अद्वैत भाव से।

प्रिय साधको!

पृथ्वी तत्व ध्यान विधि में आपको सदा बोध रखना है कि आपका शरीर पार्थिव है, माटी है। आप शरीर नहीं हैं, आप केवल उसके निवासी हैं। शरीर एक किराए के मकान की भांति है। उसको खिलाना पिलाना नहलाना..... ये सब किराया है। और यह सब रोज बरोज चुकाने के बावजूद भी एक दिन तो उसको खाली करना ही पड़ेगा। यहाँ हमेशा के लिए पेशकदमी करने की कोई व्यवस्था नहीं है। इस नियति में आपके पक्ष में यहाँ कोई कानून नहीं है, नहीं था, नहीं होगा। वैसे तो सबलोग बोलते हैं इस बात को, सब जानते भी है इस सत्य को, परंतु जानकर भी अनुसरण नहीं करते हैं, जागते नहीं हैं। क्यों ? ? ?

मुझे माटी की निंदा नहीं करनी है। मैंने पहले ही कहा कि पृथ्वी तत्व पंचमहाभूत में से एक अति महत्वपूर्ण तत्व है। इसके बिना किसी भी वस्तु का स्थूलीकरण, अथवा घन स्वरूपता या स्थिर आकार संभव नहीं है। किसी भी नवरचना के लिए स्थूल पदार्थ अनिवार्य है। और इस अनिवार्य पदार्थ से मनुष्य का शरीर बना है। इसी वजह से शरीर के लिए शरीर अनिवार्य बन गया है। माटी के लिए माटी अनिवार्य बन गई है। यह एक रहस्यमय निर्माण है।

देहधारी होना यह कोई गुनाह नहीं है। परंतु केवल देह भाव में ही लिप्त रहना यह अज्ञान है और बंधन का प्रारंभ है।

माटी की काया एक द्वार मात्र है। जहाँ से गुजरकर आप स्वर्ग और नर्क दोनों में से कहीं भी जा सकते हो। दिशा आपको तय करनी है। मनन और चिंतन आपको करना है कि आप कहाँ जाना चाहते हो। मेरा कार्य आपको चिंतनशील बनाने का है। मेरे शब्द आपको सत्य चिंतन के लिए प्रेरित करेंगे।

कुछ लोग अपने जीवन का एक तिहाई भाग बिता देते हैं नर्क की दिशा में। फिर दिशा बदलना चाहते हैं परंतु तब तक तो द्वार बंद होने का समय आ जाता है। जिसे लोग मृत्यु कहते हैं। तब फिर से नर्क से यात्रा शुरु करनी पड़ती है। मूढ मनुष्य बार बार ऐसा करता है।

आपके साथ ऐसा न हो इसलिए, और आप जाग जाएं इसलिए मैं एक मौलिक ध्यान विधि देने जा रही हूँ।

इस विधि में कुछ विशेष नहीं करना है। आपको निरंतर देखते रहना है शरीर रूपी मढ़ैया को और भीतर अविरत बोध जगाए रखना है उस पृथ्वी तत्व का।

चलो, फिरो, नाचो, गाओ, अपना काम करो परंतु याद रखना है प्रतिपल कि उस माटी की मढ़ैया आपका साथ दे रही है, वह एक चलती फिरती मढ़ैया है। जो आपकी सुविधा के लिए आपको सहारा देने के लिए, साथ साथ चल रही है परंतु आप मढ़ैया नहीं हैं।

बहुत कम लोग इस सत्य को जानते हैं कि मन का स्वभाव प्रवाही है और शरीर का स्वभाव जड़। जलत्व और जड़त्व के मेल से शरीर का बंधारण होता रहता है। जल में जलत्व है और पृथ्वी में जड़त्व है; दोनों के बीच में घनिष्ठ नाता है।

पुराण में एक कथा आती है – आदि काल में पृथ्वी जल में थी। उस पर हिरणाक्ष नाम का रक्षस कब्ज़ा करके बैठा था। विष्णु ने वराह रूप धारण करके उसका वध किया और पृथ्वी को जल में से निकालकर मृत्युलोक पर स्थापित किया और मनु को पृथ्वी पर शासन करने की आज्ञा दी।

परंतु आज भी बारिश के मौसम को छोड़कर शहर से लेकर खेतों में जहाँ विशेष जल स्रोत उपलब्ध नहीं है वहाँ बॉरिंग मेथड से पृथ्वी में से पानी निकाला जाता है। क्यों निकलता है ये पानी ? ये कुदरत की एक स्पष्ट लीला है। बरसते हुए जल को पृथ्वी संग्रहीत करती है, ये पृथ्वी के संस्कार हैं। जल में से बाहर आ जाने के बाद भी पृथ्वी अपने संस्कार नहीं छोड़ पाई, इसे पृथ्वी तत्व का प्रभाव या 'जीन्स' कह सकते हैं। अरबों, खरबों वर्ष से जल में ही होने के कारण बाहर आ जाने के बाद भी वह जलमय रही है। जल से उसका गहन तदात्म्य है। जल से प्रेम करना पृथ्वी की प्रकृति है। इसी वजह से मन और शरीर का गहरा नाता है।

मन का स्वभाव प्रवाही है, पृथ्वी तत्व का स्वभाव स्थूल। मन प्रवाही स्वाभाव की वजह से भटकता रहता है। भटकते रहने में ही उसका मनत्व सार्थक होता है। बेचारा शरीर स्थूल होने पर भी मन के बहकावे में आकर भटकता रहता है। भटकाता है मन, फल शरीर को भुगतना पड़ता है। क्यों ? क्योंकि एक महत्तत्व भी शरीर में रहता है जिसका स्वभाव है स्थिरत्व, साक्षीत्व, अक्षरत्व और अखंडत्व। परंतु मन उस तत्व का विस्मरण कर जाता है। इस विस्मरण को शास्त्र माया की प्रबलता कहते हैं।

ध्यानी माया की इस प्रबलता से मुक्त रह सकता है। एक ध्यानी माता के इकलौते पुत्र की मृत्यु हो गई। लोग आकर रोते थे, छाती पीटते थे, माता शांति से बैठी थी; देख रही थी मृत पुत्र के शरीर को। कुछ लोगों ने पूछा कि तू क्यों रोती नहीं है ! कैसी माता है ? उस नारी ने कहा कि मैं एक सच्ची माता हूँ। मैंने उस सत्य को जान लिया है कि आज या कल मेरे बच्चे की विदा अनिवार्य थी इस पृथ्वी पर से। कुछ मिट्टी पहले जा रही है कुछ मिट्टी बाद में जाएगी। इसमें रोना क्या !

माटी के संदर्भ में मेरी एक रचना याद आ रही है –

सुनो माटी की ये माया, काया माटी की बनाया
मोह माटी का ये छाया, माटी मन को लुभाया

हर बच्चे ने ये खाया, नंदलाला राम भाया
तन मन को लुभाया, माटी जवानी कहाया

माटी ने सबै बचाया, राज माटी का है छाया
क्या खुदा के मन आया, जग माटी से बसाया

चारो वेद गुन गाया, को मरम को न पाया
माटी जिंदगी को लाया, कि है मौत की ये छाया

माटी अन्न उपजाया, सब माटी से है जाया
मन माटी से रिझाया, कभी माटी से रिसाया

है माटी की बड़ी माया, माटी भान को भुलाया
तप त्याग को मिटाया, क्या मालिक मन ठांया

क्या मज़ाक है उड़ाया, कि है सत्य को सिखाया

माटी माटी को लुभाया, माटी माटी को सताया

माटी माटी से बढ़ाया, कैसा किमिया लडाया
माटी कहाँ से वो लाया राज किसी ने न पाया

ये दया ही है अदाया, बनी माटी की ये काया
माटी पीछे सब धाया, कैसे हाथ लगे छाया

भार माटी का उठाया, तो भी माटी को बढाया
हरिहर ब्रह्म आया, खेल माटी का चलाया

माटी की है महा माया, ऋषि मुनि पीछे धाया
देखो माटी ने हसाया और माटी ने रुलाया

ऐसा माटी ने फँसाया सुख दुःख दोनुं पाया
यहाँ माटी ने जीताया और माटीने हराया

कैसे मालिक ने माटी की ये लीला को चलाया
पेड़, पौंधे, चींटी, हाथी सब माटी से बनाया

उसने माटी के इलम से, जग को रचाया
फिर माटी ने लड़ाया, और माटी ने मनाया

माटी पाप करवाया, माटी पुण्य भी कमाया
कैसी 'मोहिनी' ये माटी, की जो नाच नचवाया

माटी पलने में आया माटी पलना झुलाया
माटी माटी ही रही चाहे रंक हो या राया

ऐसा माटी ने दबाया कि गया नहीं जगाया
सब माटी से ही पाया सब माटी में ही खोया

माटी बुढापे को लाया, कैसा साथ ये निभाया
माटी जग को बनाया, माटी जग को मिटाया

माटी शिव ने लगाया, माटी भ्रम को भगाया
गया माटी में जो 'मोहिनी' वो लौटके न आया

एसी माटी की माया बड़ी रहस्यमय है परंतु ध्यान उसकी निरर्थकता बता देता है।

ध्यान आपके अस्तित्व की अ-क्षरता का बोध कराता है। ध्यान के द्वारा आप पार्थिवता के प्रति सजग हो जाते हो। पार्थिवता से सजग होने का मतलब ये नहीं है कि माटी की निंदा करना उससे नफरत करना या उसे कष्ट देना। सजग रहने का अर्थ इतना ही है कि मनुष्य माटी को सर्वस्व मान लेने की गलती ना करे।

माटी की माया से मुक्त होने की कला है ध्यान। भीतर और बाहर निरंतर देखते रहो... देखते रहो... । देखो गर्भवती नारी को, फिर बच्चे को, फिर जवान को, फिर बूढे को, फिर मुर्दे को। तब माटी की मढ़ैया कैसे आकार लेती है, आकार बदलती है, कैसे जर्जरित होती है और कैसे धँस पड़ती है। इन सारी बातों का बोध होता रहेगा।

बच्चे बूढ़े और जवान सबका स्पर्श करो। स्पर्श में सजगता अनिवार्य है, आपका स्पर्श एक जाग्रत स्पर्श होना चाहिए। स्पर्श के नेत्र से

आपको मनुष्य शरीर की माटी का एक विशेष ज्ञान प्राप्त करना है। क्या क्या फेर फार होता रहता है उस मिट्टी में स्पर्श के द्वारा ये देखते रहो, अनुभव करते रहो। सरस, सुंदर और शुष्कता की भिन्नता को भिन्न भिन्न स्पर्श से समझते जाओ। यह स्पर्श एक आध्यात्मिक स्पर्श होना चाहिए। उस स्पर्श को एक ध्यान विधि समझो। प्रत्येक का साक्षी रहकर स्पर्श करो, मिट्टी की कोमलता, सुंदरता, शुष्कता, रुक्षता और रुग्णता को भी देखो। देखते रहो, लगातार देखते रहो। माटी की छाया में भी सजग रहो, जवान लड़की की छाया हो या किसी वृद्ध की, सजगता से दोनों को देखो। मन के संग मत जाना।

एक दिन अचानक आपकी समझ में आ जाएगा कि माटी कितना बड़ा माध्यम हे मुक्ति और बंधन के लिए। वेदों ने पृथ्वी तत्व के श्लोक लिखे, माटी के गुण गाए और इसी माटी की शास्त्रों ने निंदा भी बहुत की। नारी शरीर को तो नर्क की खान तक कह दिया। अगर ऐसा है तो उस खान में से निकलने वाला भी नर्क ही है। तो आपका क्या विचार है अब, बुद्ध, महावीर, राम और कृष्ण के विषय में ?

प्रिय साधको !

आक्षेप, प्रतिआक्षेप, तर्क, विवाद या खंडन–मंडन से सत्य की प्राप्ति कभी नहीं होती।

मैं कहती हूँ कि माटी के गुण अवगुण से पर जाकर केवल उसके कमाल को देखते रहो। जहाँ हकारात्मकता महसूस हो वहाँ धन्यवाद देकर आगे निकल जाओ। भले बुरे में मत पड़ो। जहाँ आपको बुरा लगे वहाँ उसके मूल स्वभाव को जानकर विशेष रूप से जाग जाओ और आपको जगाने वाली मिट्टी को भी धन्यवाद दे दो।

मिट्टी के भले या बुरे स्वरूप पर रुकना नहीं है। अगर रुके तो समझ लो कि आपका ध्यान भंग हो गया। वह मिट्टी भले आपकी हो या किसी और की, नर की हो या नारी की, संत की हो या शैतान की, न्याय करने में आपका वक्त खराब मत करना। सिर्फ दृष्टा बने रहो और देखते रहो माटी के सारे पहलुओं को। देखते रहो माटी की माया को।

माटी के गुणगान सुनो तो भी साक्षी बनकर सुनो। वह माटी फिर गाँव की अनपढ़ किसी गोरी–छोरी की हो तो भी भले और पढ़ी लिखी विश्वसुंदरी की हो तो भी भले। प्रतिपल इतना स्मरण रखो कि सुंदर आकार या कुरूपता दोनों में आखिर तो माटी ही है।

आपको माटी के संग रीझना भी नहीं है और खीजना भी नहीं है। आपकी अथवा दूसरे की माटी आपके पास कुछ भी मांगे तो कुछ भी देने का प्रयास भी मत करना कुछ पाने का लालच भी मत करना। सिर्फ देखते रहो माटी को।

रंका और बंका नाम के कुंम्हार दंपत्ती थे। रोज माटी खोदकर लाना और मिट्टी के बर्तन बेचकर गुजरान चलाना और प्रभु भजन करना ही उसका जीवन था। दुनियाँ की नजरों में गरीब होते हुए भी भीतर से दोनों परम सुखी और आत्मप्रतिष्ठित थे। एक बार पति पत्नी माटी खोदने के लिए जा रहे थे। पति कुछ कदम आगे था, रास्ते में बंका ने एक सोने का हार गिरा हुआ देखा। उसके मन में हुआ कि नारी आभूषण प्रिय होती है। शायद इस हार में मेरी पत्नी का मन ललचाएगा तो नहीं ! उसने अपने पैरों से हार पर मिट्टी डालकर हार को ढांक देने की कोशिश की। पीछे चली आ रही हुई रंका सबकुछ देख रही थी। उसने पति के पास आकर इतना ही कहा कि "मिट्टी के ऊपर मिट्टी क्यों डाल रहे हो ?" – यह है सत्य ज्ञान, पूर्ण निरासक्त भाव। मैंने मेरी एक नज़्म में लिखा है –

जो सोने में मिट्टी देखे, और मिट्टी में सोना देखे।
वो दिल की दौलत पाता है, यहाँ कायर का कुछ काम नहीं।

अगर अस्तित्व टिकाने के लिए कुछ आदान प्रदान हो भी रहा है तो समझो कि माटी की मढ़ैया काम आ रही है। मिट्टी का घर थोड़ी सुविधा दे रहा है। शायद इसीलिए कुदरत ने ये घर दिया है हमें। परंतु उससे तदात्म्य नहीं बनाना। साधक को प्रतिपल जाग्रत और अलिप्त रहना है।

माटी की माया में अभानता से प्रवेश नहीं होना चाहिए। माटी की माया में पड़कर मनुष्य ने जब जब सभानता खो दी है तब तब वह मज़ाक बन गया है दुनिया के लिए। वह दुखी हुआ है, वह तड़पा है, रोया है, फिफियाया है, यह मज़ाक बड़ी क्रूर होती है। निर्दय होती है, वह मज़ाक किसी की भी शर्म नहीं रखती। फिर वह स्वयं ब्रह्मा हो या विश्वामित्र, कोई नहीं बच पाता।

जब कोई माटी की माया में फंसता है तब लोग मिट्टी को ही दोष देते हैं, खुद दायित्व का स्वीकार नहीं करते हैं। औसत मनुष्य नैतिक रूप से नपुंसक हैं। मैंने ऐसे कई नपुंसकों को देखा है। फिर वह नर हो या नारी यह गौण है।

मैं यहाँ मानसिक नपुंसकता की बात कर रही हूँ। अभान अवस्था में की हुई गलतियाँ, सभानता से जो स्वीकार नहीं करता है वह नपुंसक है, दयनीय है, अ–आध्यात्मिक है, अ–धार्मिक है। मैं दंभी को धार्मिक नहीं कहती हूँ। परंतु सत्यभाषी को धार्मिक कहती हूँ, फिर परिणाम भले कुछ भी आए।

ये दुनियाँ बनाने वाला इतनी मिट्टी कहाँ से लाया होगा ? – ऐसा विचार आता है कभी ? यही तो है रहस्यवाद। मैं बचपन में एक गीत बार बार सुना करती थी।

दुनियां बनाने वाले,
काहे को दुनिया बनाई,
तूने काहे को दुनियां बनाई।

काहे बनाए तूने माटी के पुतले,
धरती ये प्यारी प्यारी उजले ये मुखड़े।
काहे बनाया तूने दुनियां का मेला,
उसमें लगाया जवानी का खेला।

गुपचुप तमाशा देखे वाह रे तेरी खुदाई,
तूने काहे को दुनियां बनाई।

फिर साधना करते करते समझ में आ गया कि देखते जाओ तमाशा जाग्रति के साथ। जादूगर कभी भी पूरे ओडियन्स को सम्मोहित नहीं कर सकता। ज्यादातर खेल तो हाथ चालाकी के होते हैं, कुछ म्यूजिक, कुछ वेशभूषा, कुछ नाच–गान, कुछ मंच की सजावट और लाईट डेकोरेशन। इन सारी बातों से बड़ा जादूगर आपको आंझ देता है।

कुछ खेल सही में हिप्नोटिज़्म के होते हैं। और कुछ लोग आ जाते हैं सम्मोहन के जाल में। परंतु दुनियां में उलटा है, बहुत कम लोग बच पाते हैं माया के जाल से। ज्यादातर लोग सम्मोहित हो जाते हैं।

जो बच जाते हैं उनको मैं सही अर्थ में प्रबुद्ध विरले कहूंगी। क्योंकि ऋषि मुनि भी नहीं बच पाए हैं माटी के आकर्षण से। माया और माटी की जुगलबंदी में ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी फंस गए हैं।

इसलिए बार बार कहती हूँ कि प्रत्येक क्रिया, प्रक्रिया, वस्तु, व्यक्ति, विषय और वातावरण में माटी के विविध रूपों को उसमें लिप्त हुए बिना देखते रहो माटी के असंख्य रूप हैं। माटी राम भी है, रावण भी। कृष्ण भी है कंस भी सीता भी है, सूर्पनखां भी।

इस प्रकार की समझ से और सजगता से सदंतर ध्यान करने से प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति में स्थित पृथ्वी तत्व दृष्टिगोचर होने लगेगा। फिर तो कामिनी हो या कम्प्यूटर दोनों में केवल पृथ्वी तत्व स्पष्ट रूप से दिखेगा। मोहासक्ति का तो प्रश्न ही नहीं रहेगा क्योंकि अभ्यास बन गया मिट्टी को देखने का। मिट्टी का दर्शन जितना सम्यक होगा, उतनी सफलता आपके निकट रहेगी। फिर तो हर मनुष्य एक चलते फिरते माटी के हुजरे की तरह दृष्टिगोचर होगा। और गहन साधना के बाद माटी का प्रत्येक हुजरा मंदिर बन जाएगा। आप पाप और पुण्य के पार चले जाएंगे। आपके बोध गगन में निरभ्र आसमान का आनुभव करेंगे आप। और जब माटी के मंदिर में छिपे हुए परमात्मा का दर्शन होने लगेगा तब माटी का मोह बिलकुल अदृश्य हो जाएगा। उतरो इस ध्यान विधि में। साधक साधना में स्थिर हो इसलिए साधना का समय या दिन बताने पड़ते हैं। परंतु इस ध्यान में कुछ भी निश्चित नहीं है। क्या पता कब आपका मोह छूटे माटी से! मोह छूटना क्षणिक नहीं परंतु जब शाश्वत हो तब तक करते रहो यह ध्यान चौबीसो घंटे।

जब पृथ्वी तत्व पर ध्यान करते करते आपका चैतन्य मिट्टी के पुतले की नाशवंतता और जड़त्व को जान लेता है तब माटी माटी में मिल जाने का कोई शोक नहीं रहता। वह माटी फिर खुद की हो या अन्य की, प्रिय की हो या अप्रिय की, कोई फर्क नहीं पड़ता।

इस ध्यान में गहराई से उतरने वाले के लिए मृत्यु माटी के आकार के विसर्जन की प्रक्रिया मात्र बन जाती है। ऐसा साधक मृत्युंजय बन जाता है।

धरणा - ४७

अग्नितत्व ध्यान

प्रिय साधको!

हिन्दु शास्त्र तीन प्रकार के शरीर बताते हैं – स्थूल, सूक्ष्म और कारण। कुछ लोग सात प्रकार के शरीर बताते हैं – मेंटल बोडी,

फीडजीकल बोडी, कोस्मिक बोडी, इथरिक बोडी, एस्ट्रल बोडी, स्पिरिच्युल बोडी, बोडीलेस बोडी। परंतु मनुष्य के समग्र ढांचे का गहन रूप से अभ्यास करने के बाद मेरे अनुभव के द्वारा मैं कहती हूँ कि दस प्रकार से शरीर हैं।

हमारे शास्त्रों ने जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह बताए हैं, वह तो केवल उसे कर्म और बंधन के संदर्भ में जगाने के लिए हैं।

पुराण कहता है कि

स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन देह शास्त्र ने कहे हैं। इस देह में रहकर जीव विवध कर्म करता है।

स्थूल देह जगत का व्यवहार चलाता है, सूक्ष्म देह इन्द्रियों द्वारा भागों को भोगता है और कारण देह उसके द्वारा किए गए कर्मों का फल भगता है तथा कर्म से ही सुख, दु:ख, योग और वियोग का अनुभव होता है। यह जीव कर्म पाश के बंधन में बंधकर कालचक्र में भटकता रहता है। यह जीव स्वयं के 'स्व' को भूल जाता है। स्व का आराधन जब तक वह न करे तब के वह कालचक्र में से छूट नहीं सकता और मुक्त जीव नहीं बनता।

परंतु आज के मनुष्य के लिए इसे और सरल करना जरूरी है। ताकि मनुष्य अच्छी तरह से समझ पाए अपने शरीर को।

मेरे अनुसार तत्व शरीर, साधन शरीर, संवेदना शरीर, बौद्धिक शरीर, ऐंद्रीय शरीर, इच्छा शरीर, प्राण शरीर, सूक्ष्म शरीर, अध्यात्म शरीर और सनातन शरीर; ऐसे दस शरीर हैं। एक ही शरीर दिखने पर भी ये दसो स्वरूप उस एक में समाविष्ट हैं। परंतु इन सारे शरीरों का प्रमुख आधार है – भूत शरीर। यह भूत शरीर एक ढांचा तैयार करता है अन्य शरीरों के निवास के लिए। इस भूत शरीर को आप पंच तत्व शरीर या पंचभूत शरीर या तत्व शरीर भी कह सकते हो।

फिर भी कुदरत की करामत ऐसी है कि हमें केवल एक ही शरीर नजर आता है। जिसे विज्ञान फिज़िकल बोडी और वेद स्थूल शरीर कहते हैं।

परंतु यह स्थूल देह अनेक शरीरों का जोड़ है। हर मनुष्य को उसका पता नहीं है, यह बात अलग है। साधारण मनुष्य इस विषय में कभी सोचता ही नहीं है। ऐसा क्यों ?

ऐसा इसलिए कि वेद काल के बाद साम्प्रदायिक धर्मों ने मनुष्य को अपने भीतर उतरने पर ज़्यादा ज़ोर ही नहीं दिया। ज्यातर सम्प्रदायों ने मनुष्य को बहिर्मुखी बनने की ही शिक्षा दी। अंतर्मुखी शिक्षा पर नास्तिकता की मोहर मार दी।

बुद्ध की विचारधारा की हत्या क्यों हुई ? अगर हमारा राष्ट्र उदार मतवादी है तो बुद्ध के विचार को वेद विरोधी मानकर बौद्ध मठों को क्यों जलाया गया ? कारण स्पष्ट था। तीन हजार साल पहले जब पंडित पुरोहित और बड़े बड़े धर्म गुरु कर्मकांड, यज्ञ–याग और मूर्ति पूजक बनने की शिक्षा दे रहे थे और पूरा समाज आंख बंद करके उस कर्मकांड का अनुसरण करता जा रहा था ऐसे माहौल में बुद्ध ने एक महासत्य को 'ध्यान' के रूप में दे दिया। जिससे आंखें बंद करके ध्यान में बैठने वालों के अंतर्चक्षु खुलने लगे। लोगों को ध्यान के द्वारा सत्य का बोध होने लगा।

केवल धर्म पर ही पलने वालों के लिए बौद्ध विचारधारा ने एक ख़तरा पैदा कर दिया। वे लोग असुरक्षा महसूस करने लगे। उन्होंने सोचा कि लोग अगर अपने भीतर उतरने लगेंगे तो हमारे पास आएगा कौन ? हमारा वजूद क्या रहेगा इस समाज में ? पेट कैसे पलेगा ? मठ–मंदिर कैसे चलेंगे ?

ध्यान से मनुष्य जाग जाता है, जागे हुए मनुष्य को धर्म क्या अधर्म क्या ? ज्ञान क्या अज्ञान क्या ? ध्यान तो मनुष्य को उस अवस्था तक पहुँचा देता है कि जहाँ शुभ–अशुभ सब मिट जाता है। सारे द्वंद्व समाप्त हो जाते हैं। साधक द्वैत भाव के पार चला जाता है।

जब बड़ी तादाद पर ऐसा चमत्कार घटने लगा तब कुछ लोगों ने बुद्ध की विचारधारा को नष्ट करने के लिए धर्म के नाम पर हिंसा भड़का दी। ध्यानतीर्थों को जला दिया। भय फैला दिया लोगों में, ऐसा खौफ पैदा किया कि लोग ध्यान के नाम से डरने लगे। वह डर आजतक नहीं निकला है मनुष्य के रक्त में से।

एशिया के कुछ अन्य समझदार राष्ट्र थे, जिन्होंने स्वीकार कर लिया बौद्ध विचार का। वे समर्पित हो गए ध्यान को। जपान ने तो साबित कर दिया कि ध्यान से अध्यात्म के उपरांत अन्य शक्तियाँ भी उस हद तक विकसित होती हैं कि जिन शक्तियों के द्वारा मनुष्यता के तकनीकी विकास में आप सबसे आगे निकल सकते हो।

भारत में अंतिम ढाई हजार वर्ष में ध्यान का स्थान क्रियात्मक भक्ति ने लिया और भावात्मकता अदृश्य होती गई। ध्यान धीरे धीरे लुप्त होता गया। मध्यकाल में नाथ और सिद्ध संप्रदाय में ध्यान के कुछ प्रयोग हुए, परंतु हठयोग की कठिन विधियाँ काम की न रही साधारण मनुष्यों के लिए।

मैं कहती हूँ कि धर्म को,अध्यात्म को और ध्यान को सरल और सहज बनाओ, कठिन नहीं।

आजकल अध्यात्म, ध्यान और जीवन कला सिखाने वाले कुछ कोर्स निकले हैं। गली गली में उसके क्लासिस खुल रही हैं। मैंने सुना है कि वहाँ कोर्स कम्प्लीट करने के बाद शपथ लिवाई जाती है कि कोर्स करने वाला बाहर जाकर कोर्स में क्या सिखाया जा रहा है उसकी बात किसी से नहीं कहेगा। हाँ, जो लोग उसकी मंडली में जुड़े हुए हैं उसे भले बताए। ऐसा क्यों ? मैं इसे मोनोपॉली कहूँगी। अगर सम्यक अभ्यास होता तो कोर्स करने वाला हिंसक, नशाखोर, करप्टेड, द्वेषपूर्ण, और गंदी राजनीति खेलने वाले रह सकते !ध्यान तो मनुष्य को बदल देता है।

वास्तव में कोई गूढ विधि हो तो ठीक है। शास्त्र भी कहता है कि कुपात्र को विद्या नहीं देनी चाहिए। परंतु ऐसा तो कुछ नहीं है। शपथ लेकर आने वाले लोग भी मेरे पास आकर सबकुछ बताते हैं कि ध्यान के नाम पर क्या क्या खेल चल रहा है।

मानव भीरू है, शपथ इसलिए लिवाई जाती है कि बाहर जाकर कोई किसी को कुछ कहेगा तो उसका मन अपराध भाव से भर जाएगा। उस अपराध भाव से बचने के लिए लोग चुप रहते हैं। अगर सबकुछ बोल देंगे तो राज़ ही खुल जाएगा। अगर राज़ खोलें तो भी क्या खोलें। कुछ राज़ की बात है ही नहीं ! सब खोखला है।

आत्मा परमात्मा की बातें करके खा पीकर मस्ती करके लोग अपने अपने घर गए। अब बताएं क्या ? वह तो ऑफिस में भी कर रहे थे। पिकनिक में भी कर रहे थे। बचपन में भी कर रहे थे।

गुजरात में एक घटना घटी थी। कोई चतुर आदमी ने एक स्थान पर "घोड़ो गाय छे", ऐसा बोर्ड लगाकर दस रुपिया टिकट रख दिया। लोगो की समझ वैसे भी कच्ची है, कुतुहल वश लोग पैसे खर्च करके घोड़े का गायन सुनने जाने लगे। वहाँ एक के बाद एक को प्रवेश मिलता था। बाहर आने वाले से दूसरा पहले को पूछता था कि "घोड़ो गाय छे" ? तब ठगा गया आदमी दूसरे से कहता था "हाँ, घोड़ो गाय छे"। वह कैसे कुबुल करे कि खुद मूर्ख बना है ! और तू मूर्ख मत बनना ! घोड़ा वोड़ा कोई गाता नहीं है, वहाँ केवल घोड़ा और गाय बांध कर रखे हैं। लोगों को मूर्ख बनाकर पैसे इकट्ठे करने वाले को कोई कुछ कह भी नहीं सकता था। वह तो भीतर आने वालों को दिखा देता था कि देखो ! यहाँ घोड़ा और गाय है।

मनुष्य एक बुद्धिमान प्राणी है, परंतु बौद्धिक नहीं है। अकसर बुद्धिमान लोग अपनी मूर्खता का स्वीकार नहीं कर सकते हैं। कोई किसी से कुछ खुलासा नहीं करता था। एक के बाद एक भीतर जाते रहते थे। बाहर आकर हाँ में हाँ मिलाते रहते थे। अपनी मूर्खता का अनुभव कोई बाँटना नहीं चाहता था। बहुत समय के बाद पता चला कि मामला क्या है ?

अहंकारियों की भीड़ में कोई ना कोई तो प्रमाणिक होता है। वह सत्य का स्वीकार कर लेता है। वह औरों को जगा देता है, बचा लेता है मूर्ख बनने से। खैर, मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म में मोनोपॉली क्या ? ठेकेदारी क्या ?

ध्यान के क्षेत्र को और शास्त्र को मैं सबके लिए खुला छोड़ रही हूँ। जिसकी क्षमता होगी वह तलवार की धार पर चलकर चला जाएगा संसार के भय के पार।

पिछली सदी में महेश योगी, और आचार्य रजनीश ने विश्व में ध्यान जाग्रति का अधिक से अधिक कार्य किया। परंतु वहां ध्यान को पश्चिम के रंग से रंगने का प्रयास हुआ। जिस वजह से व्यक्ति तो सफल हो गए परंतु ध्यान विफल गया। भारत की तेजस्वी संतान फिर वह बोधिसत्व हो, महेश योगी हो या आचार्य रजनीश परंतु जब अपना देश छोड़कर निकल जाते हैं तब दुनिया को फायदा भले हो परतुं भारत को नुकसान होता है। इस बात से हमें सोचना है कि जिन विभूतियों के बारे में भारत उनके मरने के बाद सोचता है या स्वीकारता है वह पहले सोचना चाहिए। ताकि अपनी ही पूंजी को गंवा न दे। मैं कहती हूँ कि अब तो मुर्दा पूजना बंद करो ! और जीवित का आदर करो। मैं चाहती हूँ कि मैं भारत में ही रहकर ध्यान के स्वरों को छेडूं और लोग सुरेले बनकर उन स्वरों में डूबते रहें।

परम सत्य पर कोई रंग नहीं चढ़ सकता, ध्यान एक परम सत्य है। उसपर रंग चढ़ाने वाला सत्य को खो देता है। फिर भी पाने वालों ने पा लिया और खोने वालों ने खो दिया।

नाथ और सिद्धों के बाद आद्यशंकराचार्य ने ज्ञान का प्रचार खूब किया परंतु ध्यान के प्रति कम लक्ष्य दिया। एक अर्थ में 'शिवोहम् शिवोहम्' के द्वारा ध्यानस्थ होने की ही बात कर रहे थे। परंतु ध्यान की सीधी बात न होने से अद्वैत विचारधारा केवल शब्दों में रह गई। केवल ज्ञान की बातें रह गईं। वेदांतियों में केवल वाद विवाद रह गया। परंतु ज्ञान की अनुभूति नहीं रही।

करीब बीस साल पहले इंदौर में वेदांत सम्मेलन था जहाँ मुझे निमंत्रित किया गया था। वहाँ की परिस्थिति देखकर वापस लौटते वक्त मैंने ठान लिया कि ज्ञान के नाम पर जहाँ केवल अज्ञान पल रहा हो और साधुता की आड़ में राजनीतियाँ चल रही हों। ऐसी सभा में मुझे नहीं जाना चाहिए।

मैं कहती हूँ कि जो ज्ञान अनुभव गम्य नहीं है वह निरर्थक है।

प्रिय साधको !

आग के भी माटी की तरह दो स्वरूप हैं – शांत और भीषण। प्रकाश, तेज, सुबह की धूप ... आदि स्वरूप अग्नि के ही हैं परंतु यह स्वरूप सुन्दर लगता है। मंदिर का दिया अथवा रात के अंधेरे में घर में जलाई हुई ज्योति पावन और परोपकारी है। परंतु वही आग भीषण और विनाशक स्वरूप भी धारण कर सकती है। अग्नि के अनेक अनेक प्रकार हैं। जैसे कि जठराग्नि, कामाग्नि, ईर्षाग्नि, ज्ञानाग्नि, विरहाग्नि, प्रेमाग्नि, क्रोधाग्नि...।

ये सब कोई काल्पनिक बातें नहीं हैं। वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और ज्ञान के स्तर पर सिद्ध हो सकें ऐसी सत्य बात हैं। आयुर्वेद में बुखार को ज्वर कहते हैं। उसे एक प्रकार का ताप ही माना है। उसमें शरीर की गर्मी अर्थात अग्नितत्व अपना संतुलन खो देता है और नियम के बाहर बढ़ने लगता है। तब उसे हम बुखार या टेम्परेचर कहते हैं। आयुर्वेद के ऋषि पच्चीस प्रकार के ज्वर मानते हैं।

उन सारे प्रकारों में शरीर संतप्त हो जोने के विविध और आश्चर्यजनक कारण बताए हैं। इनमें से दो तीन प्रकार के ज्वर का अनुभव मुझे भी हुआ है।

बुखार क्यों आता है ? बुखार के लिए निमित्त कारण भले कोई भी हो परंतु मूल कारण है, तत्व शरीर का असंतुलन। आयुर्वेद रोग के जन्म के लिए वात पित्त और कफ के तीन दोष और रस रक्त मांस मेद अस्थि, मज्जा और शुक्र इस सप्त धातुओं में से किसी भी एक धातु का दूषित होना मानता है। परंतु मेरा अस्तित्वगत अनुभव कहता है कि पंचतत्व के असंतुलन से रोग का जन्म होता है। वात पित्तादि तीन दोष और सप्त धातु आखिर तो पंचतत्व में से ही जन्म लेते हैं !

प्रिय साधको !

तत्व देह किसे कहेंगे ? अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश ये पाँच तत्व मिलकर तत्व शरीर बनता है। इन पाँचों में परस्पर जब कोई असंतुलन पैदा होता है तब शरीर पर उसका नकारात्मक असर आता है। अग्नि तत्व पर ध्यान विधि बताने के पहले आपको कुछ खास बात कहनी अनिवार्य हैं। क्योंकि मनुष्य ने कभी अपने भीतर उतरने की कोशिश ही नहीं की।

पोथी पंडितो से बचपन से बहुत सुना कि शरीर पंचमहाभूत का बना है। लोग हाँ में हाँ मिलाते जाते हैं। परंतु अस्तित्व गत रूप से इस सत्य को अनुभव करने का प्रयास कौन करता है !

मनुष्य बाहर की अग्नि से परिचित है, उपरांत वह भीतर की दो अग्नि को जानता है– जठराग्नि और कामाग्नि। क्योंकि उनका सहज और स्वाभाविक अनुभव सबको मिला है। क्रोधाग्नि भी जलता है और दूसरे को जलाता है परंतु वह अजाग्रति में भभक उठता है। वह स्वाभाविक नहीं होता।

साधारण मनुष्य पेट और शरीर की भूख को तृप्त करने की जल्दी में उस साधारण अग्नि का भी पूरा पूरा अनुभव करना चूक जाता है।

अध्यात्म विज्ञान आत्मा को अग्नि, प्रकाश, बिम्ब या ज्योति स्वरूप मानता है। आयुर्वेद के सुश्रुत पित्त को अग्नि कहते हैं। दल्लन उसके तंत्र शास्त्र में कहते हैं कि लालटेन के दिये की भांति नाभि के सौर मंडल के भीतर जरायु से ढंका हुआ अग्नि विराजमान है। कुछ शास्त्र कहते हैं कि वह अग्नि बड़े शरीर वाले प्राणियों में जौ की मात्रा में छोटे में तिल जितना और कीट पतंग में रोम जितनी अग्नि का वास है।

शारङ्गधर ऋषि कहते हैं कि पांच प्रकार के अग्नि शरीर को जीवित रखते हैं – रंजकाग्नि, पाचकाग्नि, साधकाग्नि, आलोचकाग्नि और भ्राजकाग्नि।

पकवाशय और आमाशय के पित्त को पाचकाग्नि कहा है। जो भोजन को पचाने का काम करता है।

हृदय स्थित पित्त और कफ के दोषों को दूर करके, मन को स्पष्ट और गुणवान करके जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध करने वाला है इसलिए उस अग्नि को साधकाग्नि नाम दिया है।

दृष्टि में रहा हुआ पित्त बाहर के रूप को ग्रहण करता है। तथा उसके गुण दोष की आलोचना करता है इसलिए उसे आलोचकाग्नि कहा है।

त्वचा में स्थित पित्त रंजकाग्नि है जो शरीर में कांति उत्पन्न करता है। शरीर को तेजस्वी और प्रभावशाली दिखाता है।

भ्राजकाग्नि शरीर को गरमी देता रहता है और शास्त्र ज्ञान को धारण करने के लिए बुद्धि का निष्पादन करता है। मालिश और उबडनादि से गुणवत्ता को ग्रहण करता है।

शरीर में इतने सारे प्रकार के अग्नि का वास होते हुए भी मनुष्य को उसका पूरा पूरा बोध नहीं है। किसी भी चीज का शाब्दिक ज्ञान होना और चेतना के द्वारा पूर्ण रूप से उसका अनुभव करना इन दोनों बातों में बहुत फर्क है।

प्रिय साधको !

मैं अग्नि तत्व ध्यान विधि क्यों दे रही हूँ आपको ? – इसके कुछ खास कारण हैं। भीतर की अग्नि को कर्मयोग के साथ देखते रहने से आपके शरीर में अग्नि तत्व का संतुलन होने लगेगा। उसका कार्यक्षेत्र सम्यक बनेगा।

जब दृष्टा भटक गया हो, आत्मा अशांत हो, बोध का अभाव हो तभी ही भीतर की अग्नि असंतुलित हो जाती है। आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि ऐसा सब क्यों होता है ? मैं कहती हूँ कि इसका कारण है आपका मन।

योग और तंत्र की जितनी भी विधियाँ हैं उनका सीधा संबंध मनुष्य का मन और चेतना के साथ है। मन जब विषाक्त होता है। तब उसका सीधा असर शरीर पर पड़ता है। मैंने कई बार कहा है कि आप केवल मन नहीं हो, ना केवल शरीर।

कुछ चिंतक कहते हैं कि मनुष्य साइकॉसेमेटिक है। यह शब्द मनोविज्ञान से आया हुआ है। परंतु मेरी दृष्टि से अधूरा है। बौद्धिक स्तर पर बनाए हुए शब्द अध्यात्म जगत में अधूरे पड़ जाते हैं।

मैं कहती हूँ कि आप केवल मनोदैहिक नहीं परंतु मनोदेहात्म हो। मनुष्य अगर केवल मनोदेहिक ही होता तो उसके भीतर शरीर और मन की भूख के सिवाय और कुछ भी नहीं उठता। परंतु जहाँ से परमात्मा की भावना, कल्याण की भावना और मोक्ष की भावना उठती है वहाँ से समझ लेना कि मनुष्य का आत्मजगत शुरु हो गया।

ऐसा नहीं कि इन भावनाओं की गैरमौजूदगी में आत्मा नहीं है। आत्मा तो शरीर में जन्म से ही उपस्थित है। जन्म पहले भी वह चेतना विराट में कहीं थी और जन्म के बाद भी रहेगी। आत्मतत्व ही मनुष्य का परम सत्य है। आत्मा उसके संपूर्ण अस्तित्व का आधार है परंतु मन के संस्कार इतने गहन होते हैं कि शरीर मन का संग जल्दी कर लेता है। मन शरीर पर कुछ न कुछ थोपता रहता है। मन शरीर को बहकावे में लेता है। शरीर का इस्तेमाल करता है। शरीर को सुख–दुःखादि में धकेलता है। परंतु आत्मा तो सर्व का साक्षी है।

वह तो आदि अनादि से दृष्टा भाव में स्थित है। मन और मति मनुष्य को उलझाते रहते हैं परंतु गुरुकृपा शास्त्र का संस्पर्श, आशीर्वाद या सत्संग प्राप्त होते ही अथवा पुण्योदय के प्रभाव से जब मति शुद्ध होती है तब मनुष्य को एक सही दिशा प्राप्त होती है।

सही दिशा प्राप्त होने से मनुष्य अपने सत्य के बारे में सोचने लगता है। मति के संपूर्ण शुद्धिकरण को पतंजलि ऋतंभरा प्रज्ञा नाम देते हैं। इसका अर्थ है जिसकी शोभा–सिंगार–अंबर ऋत है अर्थात सत्य है। ऐसी मति से मनुष्य अध्यात्म के प्रति प्रेरित होकर आत्मस्वरूप को जानने में उत्सुक होता है। यह उत्सुकता उसकी अंतरयात्रा का प्रारंभ बिन्दु है।

धारणा में उतरना ये नौका में चढ़ने के समान है। ध्यान में प्रवेश होना ये साधक के लिए मझधार है। और सत्य का साक्षात्कार हो जाना परम विराम है। यात्रा की समाप्ति है।

मन के द्वारा मची हुई भागदौड़ में शरीर थक जाता है। थकते थकते भी मजा लेता रहता है। मानस में संत तुलसी ने एक कटु रूपक दिया है।

सूखी हड्डी लेकर भागता हुआ कुत्ता मान लेता है कि यह हड्डी मुझसे कोई छीन न ले ! और भागते भागते उस हड्डी को चबाने की कोशिष भी करता रहता है। हकीकत में वह हड्डी श्वान के मुंह में लगती है उससे उसके मुंह में खून निकलता है, श्वान को लगता है, कि हड्डी में से स्वाद आ रहा है। वास्तव में वह अपना ही खून चख रहा है।

ऐसी स्थिति आज के मनुष्य की है। हर कोई किसी न किसी हड्डी को लेकर दौड रहा है, खुद ही ज़ख्मी हो रहा है फिर भी मानता रहता है कि वस्तु और व्यक्तियों में से स्वाद आ रहा है।

वैसे तो दृष्टांत जुगुप्सा प्रेरक है। शब्द भी थोड़े कठोर हैं, परंतु बात बिलकुल लागू हो रही है आज के मनुष्य को।

मनुष्य को जब लगता है कि उसकी चीज कोई छीन लेगा तब भीतर की अग्नि भड़क उठती है। अथवा जब वह किसी और की चीज छीन लेना चाहता है तब भी भीतर की अग्नि भड़क उठती ही। इस प्रकार के भय से या चाह से चिंता उत्पन्न होती है। और उस चिंता में से क्रोधाग्नि, कामाग्नि और ईर्ष्याग्नि भड़क उठते हैं। मनुष्य अपनी ही अग्नि में जलता रहता है।

मनुष्य को होने वाले सारे रोग केवल आहार या वातावरण के कारण नहीं हैं। आपके रोगिष्ट होने में आपके मन की भूमिका बहुत बड़ी है। प्रत्येक ध्यान मन को विशुद्ध करने की विधि है। मन का विशुद्ध होना अर्थात विसर्जित हो जाना।

आजकल ऐसीडीटी का प्रोब्लम कोमन चल रहा है। साधु बाबा कहते हैं कि आसन करो, अमुक अमुक औषधि का सेवन करो, सब

ठीक हो जाएगा। उन्हें ऐसा कहना पड़ता है। क्योंकि एक बार ढिंढोरा पीट दिया है विश्व को रोगमुक्त करने का तो और कोई करे या ना करे परंतु उनको तो अपने निवेदन पर अड़े रहना पड़ेगा जिन्दगी भर ! अरे भाई ! अब तो इज्जत का सवाल है।

आप डॉक्टर के पास जाएंगे तो डॉक्टर कुछ परहेज देगा और शरीर में उत्पन्न होने वाले एसिड को दबाने वाली दवाईयां देगा। दवाई लेंगे तब तक आराम मिलेगा। परंतु उन दवाईयों की प्रतिक्रियाएं भी कम नहीं होतीं। मैं कहती हूँ कि मनुष्य के मन में जो ऐसिड, जो अग्नि, जो खटास उत्पन्न हो रही है उसका क्या करेंगे !

ऐसी बहुत सारी बातें हैं जिसे डॉक्टर नहीं समझ पाते हैं। हाँ, अगर डॉक्टर आध्यात्मिक है, ध्यान में उतरा है, उसके पास कुछ अनुभव है प्रत्यक्ष, मन को समझने का तब तो कुछ और मार्गदर्शन भी कर पाएगा। परंतु मन को नहीं जाना है और केवल मन के बारे में पुस्तकें पढ़ीं हैं तो यह रेडीमेड ज्ञान कभी कभी जंक फूड और फास्टफूड जैसी प्रतिक्रिया करता है।

बासी और रसायणों से सुरक्षित रखा हुआ भोजन खाने के वक्त तो अच्छा लगता है परंतु लंबे अरसे में नुकसान करता है।

ज्यादातर डॉक्टर आपको ठीक करना नहीं चाहते हैं। वे रेग्युलर विज़िट चाहते हैं, क्यों ? क्योंकि वे कोई ध्यानी या सन्यासी नहीं होते। सन्यासी का पेट भिक्षा में मिली एक वक्त की दाल रोटी से भी तृप्त हो जाता है। परंतु डॉक्टर और फार्मेसियों के मालिकों का पेट अरबों रुपयों से भी नहीं भरता। आपकी नादुरस्ती में ही उनकी आर्थिक तंदुरस्ती का राज छिपा है।

मैं कहती हूँ कि आज के युग में मनुष्य के तन से ज्यादा उसके मन का इलाज करना बहुत जरूरी है। और मन का इलाज करने का सही तरीका है ध्यान।

पेशेन्ट की बहुत सारे पीड़ाएं ऐसी होती हैं जिसका निदान डॉक्टर नहीं कर पाते हैं। एक बच्चे से जब उसकी माँ बिछुड़ जाती है तब बच्चे को बुखार आ जाता है। लोग बच्चे को डॉक्टर के पास ले जाते हैं, दवाईयों का असर नहीं आ रहा है। क्यों ? वह प्रेमाग्नि है। वह बुखार माँ के प्रेम के अभाव से पैदा हुआ है। वास्तव में बच्चे को माता के वात्सल्य और प्रेम की जरूरत होती है, दवाई की नहीं। लोग उसे दवाई खिलाते जाते हैं। धीरे धीरे उसका मन शांत हो जाता है, तब उसका रोना तड़पना भी कम हो जाता है। वह समाधान करना सीख लेता है परिस्थितियों के साथ। अगर समाधान नहीं साध पाया तो मर जाता है। अग्नि जला देती है मनुष्य को।

एक प्रेमिका बिछड़ जाती है अपने प्रेमी से, तब बीमार हो जाती है। उसके शरीर का टेम्प्रेचर बढ़ जाता है। डॉक्टर कहता है बुखार है, ब्लड-टैस्ट किया जाता है, रक्त में बुखार के जंतु नहीं मिलते, फिर भी बुखार नहीं उतरता। बोतलें चढ़ने लगती हैं, अस्तपताल का बिल बढ़ने लगता है। कौन समझेगा प्रेमिका के मन को ! मैं कहूँगी उसके बुखार को मत देखो, उसके मन में झांको। उसकी बीमारी के कारण में उतरेंगे तो कामाग्नि और प्रेमाग्नि का ही निदान होगा। हमारे वेदों ने यह काम किया है। ऐसे बुखार को आयुर्वेद काम ज्वर कहता है।

एक आदमी का ब्लडप्रेशर एकदम बढ़ गया। बुखार चढ़ गया। सबको इज्जत की चिंता है, सत्य की चिंता किसी को भी नहीं। डॉक्टर को सच्ची हिस्ट्री कोई नहीं बताता। डॉक्टर गोलियाँ देकर सब काबू में लाने की कोशिष करता है परंतु परिणाम नहीं मिल रहा है, क्या कारण है ? ब्लड प्रेशर बढ़ने का कारण था क्रोध। क्यों आ रहा था क्रोध ? क्योंकि पत्नी से प्रेम नही मिल रहा है, लड़का काबू से बाहर है, लड़की जवान हो रही है, परिवार से आत्मीयता नहीं है, स्वभाव को बदल नहीं सकता, बाहर से हंसता रहता है परंतु भीतर जलता है।

आखिर बनावट कब तक। यह सारी बनावट एक दिन रोग के स्वरूप में खुली पड़ गई। कोई जाने या ना जाने परंतु खुद को तो पता है कि मूल कारण क्या है ? अफसोस की बात तो यह है कि इतना कुछ भुगतने और जानने पर भी उसका अहंकार ध्यान की ओर नहीं मुड़ता ! कैसी है यह अज्ञान की जाल !

ऐसे तो असंख्य किस्से मैंने देखे हैं। कभी कभी परिवार के लोग भी ज़ालिम होते हैं। वे जानते हैं कि पेशेन्ट को प्रेम की जरूरत है, अपनेपन की जरूरत है लेकिन वे प्रेम नहीं दे सकते हैं; बड़ी कंजूस है यह दुनियां। वह स्वार्थ की भाषा ही समझती है, और दिखावे की। अस्पताल ले जाते हैं, टिफिन पहुंचाते हैं, दवाईयाँ भी खिलाते हैं, परंतु प्रेम नहीं दे सकते। कैसे दे पाएंगे ! उनकी झोली भी खाली है।

प्रेम तो एक गहन समझ का विषय है। सहानुभूति और प्रेम में बहुत फर्क है। प्रेम तो स्वयं परमात्मा है। ध्यान के बिना, ज्ञान के बिना और जाग्रति के बिना कहाँ से आएगा प्रेम !

इसलिए तो कबीर ने कहा है कि **"प्रेम न हाट बिकाय।"**

पैसों से दवाइयाँ मिल सकती हैं, प्रेम नहीं। मैं कहती हूँ कि ज्ञान मिश्रित प्रेम मनुष्य की किसी भी प्रकार की अग्नि को तुरंत शांत कर सकता है। परंतु ऐसी प्रेम की क्षमता आएगी कहाँ से ? ऐसी क्षमता आप केवल ध्यान से प्राप्त कर पाएंगे।

कुछ ध्यान विधियाँ मैंने मेरे ऊपर कुछ खास परिस्थितियों में खास रूप से आजमाई हैं और अनुभव के बाद मुझे लगा कि साधकों को

मदद मिल सकती है इस ध्यान विधि से, तब मैंने ऐसी विधियों के कुछ विशेष नाम दे दिए हैं, आपकी सुविधा के लिए।

इसी प्रवाह में, इस ध्यान का नाम मैं दे रही हूँ – अग्नितत्व ध्यान।

विशेष परिस्थितियों में जब शरीर की विशेष अग्नि मन के दूषित होने की वजह से भभक उठे तब ध्यान शीतल जल का काम करता है और अग्नि को शांत कर देता है।

अपने नित्य कार्यों को करते करते आप देखते रहो भीतर की अग्नि को। उस अग्नि को न तो बुझाने की कोशिष करनी है न उसके साथ जलना है। आपको सिर्फ उसे देखना है। देखते देखते अभ्यास दृढ हो जाएगा तब आपके भीतर उत्पन्न हुई अग्नि और आप दोनों भिन्न भिन्न होंगे।

आप अपने दृष्टा भाव में भीतर की सारी मन:स्थिति को देख पाएंगे। शांत और अशांत, उग्र और सहष्णु, प्रेमपूर्णता और घृणा राग और द्वेष। सबकुछ आप देख पाएंगे एक आइने के प्रतिबिंब की भांति।

किसी भी प्रकार की अग्नि से लिप्त हुए बिना देखते जाओ.... देखते जाओ उस अग्नि के स्वरूपों को। क्षुधाग्नि को भी देखो, क्रोधाग्नि को भी देखो, कामाग्नि को भी देखो। भीतर किसी भी प्रकार की अग्नि उत्पन्न हो तो स्वयं को अपराध भाव से मत भरना। कुछ अग्नि प्राकृतिक रूप से प्रगट होती है जिसके लिए आप जिम्मेदार नहीं हो। और कुछ अग्नि मन की चालबाजियों से पैदा हुई है तो उसे भी ठीक से जान लेना। स्वयं को अपराध भाव से मत भरना।

अनेक जन्मों से मन तिल्ली लगाता रहा है, लपटें आज उठी हैं। आज तक उन लपटों में आप जल रहे थे परंतु आपको पता नहीं था कि कैसे जल रहा हूँ ? किससे जल रहा हूँ ? क्यों जल रहा हूँ ?

ध्यान आपको दृष्टि देगा सबकुछ स्पष्ट रूप से देखने की। उठने दो लपटें, उसे बुझाने की कोशिश भी मत करना, उसके साथ जलना भी मत, उसे तीसरी आंख से केवल देखते रहो, देखते रहो, यही ध्यान करना है। यही ध्यान विधि है। साक्षी भाव से देखने की प्रक्रिया एक दिन अचानक ज्ञानाग्नि को प्रगट कर देगी। और उस ज्ञानाग्नि में धीरे धीरे अनावश्यक अग्नि विलीन होती जाएगी।

ध्यान की परम शीतलता में और शांति में भीतर उठती हुई एक ऐसी अग्नि का दर्शन होगा जो सर्वसाक्षी, तटस्थ और सनातन है। जो चौरासी लाख योनियों में भी प्रतिबिम्बित हो रही है। वही परब्रह्म का पता है। वही है अंतिम शुद्धिकरण। वह अग्नि विनाशक नहीं परंतु नवजीवन का प्रभात है। वह भक्षक नहीं परंतु सर्वरक्षक है। आज से आरंभ करो इस विधि का। और बचा लो स्वयं को आपको पीड़ित करने वाली अग्नियों से।

धरणा - ४८

वायुतत्व ध्यान

प्रिय साधको !

वायु सर्वप्राण है, सर्वायुष्य है। आपके भीतर की वायु की गतिमयता ही आपका जीवन है। वायु के संदर्भ में मैंने श्वास पर आधारित ध्यान विधियों में बहुत कुछ कह दिया है। फिर भी यहाँ जो बात कहने जा रही हूँ वह भिन्न है।

ध्यान की बहुत सारी विधियाँ ऐसी हैं कि थोड़े थोड़े फर्क के साथ समान ही लगती हैं। परंतु उस फर्क को नजरअंदाज़ करने से संभव है कि आपको जो कुछ करना है उसको आप गलत ढंग से कर लो। इसलिए विशेष ध्यान देना। यह ध्यान विधि अत्यंत सरल होने पर भी सूक्ष्म, गहन, और गूढ है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में वायु गतिमान है। उस गति के प्रति आपकी समग्र चेतना को घनिभूत करो। फिर से ध्यान रहे, केवल श्वास के प्रति नहीं परंतु संपूर्ण शरीर में चलित वायु के प्रति अर्थात शारीरिक वायु की भीतरी गति के प्रति कर्मयोगी बने रहते हुए पूर्ण लक्ष्य देना है। अपने कार्यों को करते रहो, रोज ब रोज का कामकाज छोड़ना नहीं है। बाहरी स्तर पर स्वाभाविक रहो। किसीको कुछ कहने की भी जरूरत नहीं है। किसीको पता भी नहीं लगना चाहिए कि भीतर कुछ प्रक्रिया चल रही है।

संतों ने कहा है कि तप का प्रचार नहीं करना चाहिए। तप और साधना को गुप्त रखो, ऐसा क्यों ? उसका एक ही कारण है कि बाहर के ऐसे लोग जिसका ध्यान के साथ कोई संबंध नहीं है उन्हें पता चलेगा कि आपका तार कहीं भीतरी तत्व से या सूक्ष्म ध्यान विधि से जुड़ा हुआ है तो वे विक्षेप खड़ा कर सकते हैं। वे लोग भले कुछ भी न करें फिर भी आपके ध्यान के प्रति उसका नकार अथवा संशयात्मक दृष्टिकोण के असर से आपकी भीतरी लय टूट सकती है।

ऐसा भी संभव है कि वे लोग आपको उकसाएं, क्रोध कराएं, या कोई ऐसे काम में व्यस्त कर दें कि जहाँ भीतर तार जुड़ना कठिन या असंभव हो जाए।

प्रिय साधको!

साधक का भीतर से जब जब तार टूटता है तब केवल साधना की श्रृंखला नहीं परंतु स्वयं साधक भी टूटता है। अगर गुरु की मौजूदगी है तो ऐसे समय में गुरु से मदद मिल सकती है। परंतु जो साधक अकेला है तो उसे ज्यादा से ज्यादा सजग रहना पड़ेगा।

इसलिए तो मैं कह रही हूँ कि साधना को गुप्त रखो। बाहर का नाटक साधारण रूप से चलने दो। आप परम लक्ष्य बनाए रखो शरीर के भीतर के वायु प्रवाह के साथ। वायु रूप बन जाओ। वायु के साथ बहने लगो अपने रोम रोम में। भीतर ही भीतर घूमते रहो अपने वायु के साथ। यह आंतरिक गतिमयता धीरे धीरे एक भव्य गतिमयता को जन्म देगी। जिसे ऋषि सदगति या आध्यात्मिक गति कहते हैं।

आपकी चेतना को वायु के साथ बहते बहते वायुरूप ही बन जाने दो। जब ऐसा होगा तब महाप्राणरूप वैश्विक वायु के संग भी आप बहने लगेंगे। अचानक आप एक परम गतिशीलता का अनुभव करेंगे।

गति जीवन है गति गीत है
गति महा संगीत है,
गतिशील जो जीव नहीं
वो मृत्यु से भयभीत है।

गतिमयता का मर्म समझ ले
तब साधक सद्गति होगी,
यती सती योगी भोगी की
गति बिना अवगति होगी।

यह गति को अध्यात्म कहो
या सन्मुखता कहो ईश्वर से,
अथवा कह दो पूर्ण जाग्रति
निर्ममत्व कहो नश्वर से।

और वह परम गतिशीलता का अनुभव आपको एक शाश्वत विश्व में प्रवेश दे देगा। जहाँ प्राण और महाप्राण, जीव और ब्रह्म, स्थूल और सूक्ष्म भिन्न नहीं रहेंगे।

धरणा - ४९

जलतत्व ध्यान

प्रिय साधको!

जल जीवनवर्धक भी है और जीवनसर्जक भी है। अन्य तत्वों की भांति जलतत्व भी मनुष्य जीवन के लिए एक अनिवार्य तत्व है। शरीर में से जल तत्व के कम हो जाने से शरीर क्षीणता और दुर्बलता का अनुभव करता है।

मेरा अनुभव है कि कुछ दिन तक अन्न न मिले तो मनुष्य जी सकता है क्योंकि कुदरत की रचना ही ऐसी है कि क्षुधा से पीड़ित शरीर

शरीर को ही सूक्ष्म रूप से खाने लगता है। भीतर के मांस मेद का उपयोग करके शरीर कुछ दिन बिता देते हैं। अन्न के बिना कम से कम नब्बे दिन तक मनुष्य जी सकता है। अन्न का अर्थ यहाँ भोजन करना, वह भोजन फल फूल या कंदर–मूल भी हो सकता है। परंतु पानी के बिना जीवन असंभव हो जाता है।

हिन्दु शास्त्र कहता है कि जल के सूक्ष्म भाग से प्राण पुष्ट होते हैं। मध्य भाग से रक्त बनता है और निरर्थक भाग शरीर से बाहर निकल जाता है।

मनुष्य देह में जल तत्व की वजह से तो रक्त में प्रवाहिता और रस में रसत्व है। मांस, मेद और रक्त वाहिनियों के उपरांत शरीर के महत्वपूर्ण अंग जल के अभाव में सूखी लकड़ी जैसा हो जाता है।

केवल मनुष्य के लिए ही नहीं परंतु भारतीय पुराणों का अभ्यास किया जाए तो अमृत की खोज देवों और दानवों ने मिलकर जल में की है। चौदह रत्न जल से प्राप्त हुए हैं। देवों ने जल से अमृत पाया है। परंतु मैं कहती हूँ कि मनुष्य देह जैसा रत्न विश्व में और कोई नहीं है। जो रत्न आपको बिना मांगे मिल गया है तो ध्यान के द्वारा परम कल्याण साधकर उस रत्न की कद्र कर लो।

विश्व में तीन भाग का जल है और एक भाग की जमीन। इस रचना से ही कुदरत हमें बताती है कि जल की महिमा ज्यादा है, जल की आवश्यकता ज्यादा है। मनुष्य देह में साठ प्रतिशत जल तत्व है।

शास्त्र कहते हैं कि इस ब्रह्मांड में सर्वप्रथम जल ही था, पृथ्वी बाद में उत्पन्न हुई। धर्म और विज्ञान दोनों जीव सृष्टि की उत्पत्ति जल से बताते हैं। एक अर्थ में मनुष्य जल जीवी है।

अन्न को ब्रह्म भले कहा, परंतु जल के बिना भोजन की कोई महिमा नहीं है। पानी के बिना पाक शास्त्र निरर्थक हो जाएगा। गर्मी से बचने के लिए मनुष्य ने जैसे विविध उपकरणों की खोज की है वैसे ही विविध पेय पदार्थों की खोज करके जल को विविध रंग रूप और स्वाद देकर उससे शांति और तृप्ति पाई है।

मनुष्य के दिमाग के हिस्से में ७० प्रतिशत जल है और रक्त में ८० प्रतिशत। जीवन जीने के लिए वायु के बाद का कोई अहम परिबल हो तो ये है जल।

विश्व के सभी धर्म जल को पवित्र मानते हैं। हिन्दू के लिए गंगा और यमुना दर्शनीय और पावन हैं तो मुस्लिमों के लिए झमझम का झरना।

स्वच्छता से ज्यादा पवित्रता के संदर्भ में मनुष्य जल का आदर करता है। स्वच्छता और पवित्रता का गाढ संबंध है। भोजन के साथ जो जल प्रयोग हुआ है वह स्वाद के लिए है परंतु कुछ धार्मिक प्रयोगों में जल का उपयोग गूढ तत्व की खोज के लिए हुआ है।

शरीर में पानी का स्तर कम हो जाने की स्थिति को आधुनिक विज्ञान डीहाइड्रेशन के नाम से जानता है। डार्विन कहता है कि पहले जल के जंतु उत्पन्न हुए और फिर सृष्टि में उत्क्रांति हुई। हमारे हिन्दु शास्त्र कहते हैं सर्वप्रथम नारायण हुए और उनकी नाभि कमल में से ब्रह्मा प्रगटे। ब्रह्मा ने प्राकृत और वैकृत सृष्टि का सर्जन किया। जिस सृष्टि में मनुष्य परमात्मा की अंतिम रचना है। इसे परमात्मा की अंतिम खोज भी कह सकते हैं। अफसोस की बात है कि परमात्मा ने मनुष्य को खोज लिया परंतु मनुष्य ने परमात्मा को खो दिया।

'नार:' संस्कृत शब्द है। नार: का अर्थ होता है जल और 'अयन' का अर्थ होता है निवास, पता, रहना....। नारायण का अर्थ है जो जल में निवास करता है। ऐसे सूक्ष्म परमात्मा के द्वारा सृष्टि का विकास हुआ।

वृहद और उदार दृष्टि से देखा जाए तो नारायण जीव प्राणीमात्र में है। विश्व के सारे धर्मों में अन्य किसी भी बात को लेकर मतभेद हो सकता है परंतु एक बात तो सर्वसामान्य है कि परमात्मा से अथवा कोई गहन या गूढ रहस्यमय शक्ति से जगत की उत्पत्ति, स्थिति और पालन हो रहा है।

उस परमात्मा को लोग भले भिन्न भिन्न नाम से पहचाने परंतु सृष्टि सृजन का स्वीकार तो सब करते हैं।

मैं तो कहूंगी कि माँ के गर्भाशय में सोया हुआ बच्चा नारायण ही है। क्योंकि गर्भाशय के जल में ही बच्चा तैरता रहता है नौ महीने तक। उस जल को विज्ञान एम्नोएटिक फ्लूइड कहता है। माँ के गर्भाशय में अगर यह जल सूख जाए तो माता और बालक दोनों के जीवन को खतरा होता है।

मनुष्य के स्वास्थ्य का आधार जल पर है। वॉटर थेरेपी को अपनाकर अनेक रोग मिटाए जाते हैं। मनुष्य के पूरे शरीर में जल तत्व छाया हुआ है। जल तत्व के कारण वायु के बल से नाड़ियों में रक्त बह रहा है। मनुष्य शरीर के सात करोड कोष जल तत्व से युक्त हैं। नेत्र के जल तत्व से आंखें पानीदार और सुंदर दिखती हैं इतना ही नहीं परंतु उस नेत्र जल की वजह से वह दृश्य देखने में सक्षम रहती हैं। शरीर की अंत:स्त्रावी

ग्रंथियों के रसायण जल तत्व युक्त होने से जल्दी सक्रिय हो सकते हैं।

जल तत्व के कारण ही मस्तिष्क कार्यान्वित है। हृदय में एक खास प्रकार का प्रवाही जीवन रस से पूर्ण है। श्रवणेन्द्रिय में भी एक खास प्रकार का प्रवाही ध्वनि तरंगों को झेलता है। भिन्न भिन्न प्रकार के स्वाद ग्रहण करने के लिए भी परमात्मा ने ऐसी खास चमड़ी बनाई और वहाँ खास ऐसी ग्रंथियाँ बनाई हैं कि जिनमें से सदा सर्वदा पाचक रस उत्पन्न होता है। जो अन्न में मिलकर भोजन को सुपाच्य बनाता है, जिसे विज्ञान सलाइवरी ग्लेंड्स कहता है। संस्कृत ने विविध रसों को ग्रहण करने वाले अंग को रसा कहा। रसा का अर्थ है जिव्हा। परंतु रसा शब्द अपनेआपमें एक विशाल अर्थ समाविष्ट कर सकता है।

मेरी दृष्टि से मैं और आप सब नारायण हैं। पुराण कहते हैं कि नारायण पानी में वास करते हैं। मैं कहती हूँ कि वह एक प्रतीक है। भारतीय पुराणों के प्रतीक अद्भुत, अनूठे और गूढ हैं।

मैं कहती हूँ कि हमारे नारायण भी जल में ही विराम कर रहे हैं। हम गर्भ में थे तब भी हमारा जल में वास था और जन्म से लेकर आजतक जल में ही बस रहे हैं। जरा सोचो, अगर शरीर में से जल तत्व उड़ जाए तो क्या होगा ? जल के बिना जीवन असंभव है।

इतना सबकुछ इसलिए कहना पड़ा कि जल के पक्ष में मेरी इतनी सारी बातो पर सजगता से विचार करके आप अपने भीतर के जलतत्व का पूरा पूरा बोध कर लो। क्योंकि मनुष्य दुनियाँ को देखने में जीवन गंवा देता है और भीतर भरी हुई अजायबियों के अनुभव से वंचित रह जाता है।

आज के मनुष्य को ज्ञान और विज्ञान की भाषा में किसी भी सत्य को विस्तार से समझाया नहीं जाता तब तक उसका मनोयोग नहीं हो पाता उस सत्य के साथ। मैं आपके भीतर आपका मनोयोग हो, आपके भीतर आप अवधान प्राप्त कर लो, आपके भीतर के प्रभार को समझ लो ऐसा चाहती हूँ। और कभी कभी ध्यान की विषय वस्तु के संदर्भ में विस्तृत चर्चा के बिना मनोयोग साधना असंभव हो जाता है।

मैं बार बार कहती हूँ कि मनुष्य को बाहर भटकने की ऐसी आदत है कि उसे अपने भीतर उतरना कठिन लग रहा है। ध्यान में स्थिर होना उसके लिए असंभव जैसा हो गया है। कुछ लोग बार बार भीतर उतरने की कोशिश तो करते हैं परंतु उसका मन उसे बार बार ध्यान से दूर खींच जाता है। बेचारा मनुष्य ! सत्य जानते हुए भी अनुसरण नहीं कर सकता। बहुतों की हालात दुर्योधन जैसी है। दुर्योधन महाभारत में बोलता है कि मैं धर्म को जाता हूँ परंतु उसमें प्रवृत्त नहीं हो सकता। और अधर्म भी जानता हूँ परंतु उससे निवृत्त नहीं हो सकता। क्यों ?

क्योंकि संस्कार। अहंकार का, मन का और मस्तिष्क का स्वभाव है कि वे हमेशा आपको उसके पक्ष में खींचने की कोशिश करते हैं। और सत्य का स्वभाव है कि वह आपको उन सबसे ऊपर उठाकर परम सत्य में अथवा स्वस्वरूप में अथवा आत्मप्रज्ञा में स्थिर कर देता है। मैं कहती हूँ कि आत्मप्रज्ञा में प्रतिष्ठित होने के लिए आपकी तीव्र चाह अनिवार्य है।

स्वस्वरूप में स्थिर होने का भाव जगना यह एक बड़भाग है। वह भाव ही आपको सत्य तक पहुँचा देगा। ध्यान सत्य के साक्षात्कार के लिए माध्यम बन जाएगा।

इस बात का जीवनभर अनुभव करने के बाद ही मैं प्रेरित हुई हूँ आपको इतनी सारी विधियाँ देने के लिए। वैसे तो एक विधि ही पर्याप्त है आत्मबोध जगाने कि लिए। परंतु क्या पता कौन सी विधि आपकी मदद कर जाए !

इसलिए ही परंपरागत विधियों के उपरांत भी असंख्य मानव मन के साथ प्रयोग करने के बाद जो खरी उतरी हैं ऐसी नूतन फिर भी सनातन विधियाँ मैं आपको दे रही हूँ। और उन विधियों में से एक है जलतत्व ध्यान।

प्रिय साधको !

शरीर के जलतत्व पर ध्यान करना है तो पहले शरीर के भीतरी जल की महिमा समझ लेना अनिवार्य था आपके लिए। खैर, आपको बार बार पुनर्समरण कराना अनिवार्य है। लोग मुझे सुनने के बाद कहते है कि मैया ! हम जानते तो थे कुछ बातों को, परंतु दृष्टि इतनी स्पष्ट नहीं थी। विषय वस्तु को इतना साफ साफ कभी नहीं समझ पाए थे। आपके शब्दों ने हमारे शरीर के तत्वों को सूक्ष्मता से, गहनता से और पूर्ण रूप से उपरांत ज्ञान और विज्ञान के साथ जानने को प्रेरित किया। अब बहुत सारी स्पष्टताएं हो गईं।

लोग मुझे कहते हैं कि मैया ! अगर आप सीधा कह देते कि आपका कामकाज करते हुए भीतर में परिभ्रमण करते हुए जलतत्व का ध्यान करो तो हमें भीतर कहीं जल दिखाई ही नहीं देता ! क्योंकि हम तो एक पंचतत्व की मिलावट से बने हुए एक ढांचे को चर्मचक्षु से देखते रहने के सिवाय और कुछ नहीं जानते ! ज्यादातर तो आईने में हमारा चेहरा देखकर हम केवल उस प्रतिबिम्ब के द्वारा हमारे बाहरी आकार को ही पहचानते थे।

आपकी वाणी ने उस प्रतिबिम्ब में परमात्मा का दर्शन करा दिया।

प्रिय साधको !

मैं जब किसी साधक के द्वारा उसके ऐसे अभिप्रायों को सुनती हूँ तब मेरा बोलना और लिखना सार्थक हो जाता है। मनुष्य सिर्फ आइने के माध्यम से ही खुद को जानता है। ये ऊपर ऊपर का जानना है, भीतर तो कभी देखा ही नहीं। अगर देखता है तो भी उसकी नजरों से। उसकी नजरों से तो भीतर हाड मांस ही मिलेंगे, सत्य की आंखों से अगर वह देखेगा अपने भीतर तो कुछ महासत्यों को पाएगा।

दुनियां का कोई आइना मनुष्य के भीतर नहीं झांक सकता। शरीर में से क्ष–किरणों के द्वारा खींचा हुआ एक्स–रे भी हड्डी पसली बताएगा, सत्य का दर्शन कराने की क्षमता उसमें नहीं है।

अगर किसी आईने ने झांक भी लिया तो बोल नहीं सकता। और एक बार मान लें कि आइना आपके बारे में सच बोल भी दे तो आप आईने को फोड़ देंगे। अथवा खुद को बाहर से बदल लेंगे। मुखोटा पहन लेंगे।

आईना रोज़ रोज़ कुछ ना कुछ तो सच बता ही देता है। वह कहता है कि तेरी आंखों पर और चहरे पर झुर्रियाँ हैं, बाल सफेद हो रहे हैं। चेहरा निस्तेज हो रहा है लेकिन कौन सुने बेचारे आइने की ! आइना सत्य का बोध कराता जाता है। वह आपको बुढ़ापे का दर्शन कराता रहता है। और आप असत्य की यात्रा शुरु कर देते हैं। मनुष्य ने कोस्मेटिक्स, ब्यूटिपार्लर और हेरडाइ का सहारा लेकर आइने को झूंठ बोलने और झूंठ बताने पर मजबूर कर दिया !

मैं कहती हूँ कि मनुष्य एक बार ध्यान में उतरकर अपने भीतर उतरना सीख ले तो उसका हृदय ही सबसे बड़ा तीर्थ बन जाएगा। उसका देह सबसे बड़ा धर्म स्थान और धार्मिक वक्ता बन जाएगा। शरीर सबकुछ ज्ञान करा देता है। परंतु भीतर देखो तब ना !

मेरे सारे प्रयास मनुष्य को आत्मदृष्टा बनाने के लिए हैं। सत्य दृष्टा बनाने के लिए हैं। और उसके लिए परम आधार है ध्यान।

प्यारे साधको !

अब एक बार फिर से ध्यानविधि ज्यादा सजगता के साथ समझ लो। चलते फिरते, उठते बैठते और काम काज करते हुए भी एक अंतरदृष्टि खुली रखो। जिससे बाहर की प्रवृत्तियों से विक्षिप्त हुए बिना भीतर प्रवाहित जल तत्व को आप देखते रहो।

ऐसी दृष्टि और स्थिर भाव से विकसित होते हुए अंतरध्यान को मैं मनोयोग कहती हूँ। उसे आप अवधान भी कह सकते हैं।

अपने रोज–ब–रोज का काम करते हुए निरंतर अवधान बनाए रखो शरीर के जल तत्व के साथ। आपकी अंतरदृष्टि को बना दो प्रभारी (आंतरिक व्यवस्था देखने वाला)। वही है सच्चा होश वही है पूर्ण जाग्रति। वही है विवेक दृष्टि।

अपने भीतर देखते रहो... देखते रहो... देखते रहो ... रोम रोम में निरंतर परिभ्रमित और शरीर को रसीला रखने वाले प्रवाही पदार्थ को। धीरे धीरे उसकी सूक्ष्मता में उतरते जाओ। कुछ दिनों के बाद उसमें स्पष्ट रूप से जल तत्व का दर्शन होने लगेगा।

उस जल तत्व के दर्शन करते करते जल रूप हो जाओ। बहने लगो जल के साथ शरीर के सात करोड परमाणु में, बन जाओ परमात्मा की गुप्त शाखा प्रशाखाओं का महाप्रवाह, अचानक सत्य घट जाएगा। उस क्षण में आप व्यक्ति मिट जाएंगे और पूर्णता का अनुभव करने लगेंगे। यही है ध्यान की सफलता और चरम सीमा।

वह पूर्णता ही परमात्मा का अनुभव है। फिर तो अन्य में भी यह दर्शन सहज हो जाएगा। परंतु पहले आप अपने में उतर के पूर्ण रूप से बह लो और पूर्ण रूप से समझ लो इस बात को कि पूर्णत्व क्या है ? भीतर के जल प्रवाह पर किया हुआ ध्यान आपके हृदय को शीतलता और शांति देगा। और विराट के महाप्रवाह का दिव्य अनुभव कराके ज्ञान के विश्व में स्थिर कर देगा।

धरणा - ५०

आकाशतत्व ध्यान

प्रिय साधको !

आज में आपको जिस विधि की ओर ले जा रही हूँ वह मेरे एक विराट परंतु सूक्ष्म अनुभव में से निष्पन्न हुई एक मौलिक ध्यान विधि है।

मैं बार बार कहती हूँ कि ध्यान की प्रत्येक विधि मनुष्यके मन के साथ काम करती है। एक बात हमेशा याद रखना कि आप छोटे हो और आपका मन बड़ा है। वह भले दिखाई न दे रहा हो परंतु मन बड़ा है। आपके मन में प्रश्न होगा कि मन क्या है ? मन का अर्थ है विषय, वासना, एषणा एवं आसक्ति के पुराने संस्कार। एक माया से निर्मित उपाधि का नाम है मन।

प्रिय साधको !

कई जन्मों से आप सोए हुए हो, इस जन्म में भी सोए हुए हो। आप कहेंगे कि हम तो जागते हैं, ना आप सोए हुए हैं। अगर जागे हुए होते तो यहाँ आते ही नहीं। जागे हुए का आवागमन मिट जाता है। जागे हुए के रिश्ते नाते मिट जाते हैं। जाग्रत आत्मा की नियति भी मिट जाती है। जागे हुए को कुछ भी ढूंढना नहीं पड़ता है।

आपने जन्म ले लिया पृथ्वी पर यही सबसे बड़ा सबूत है आपकी अतीत की अजाग्रति का। हाँ, आप मेरे पास आए हो जागने के इरादे से। इसलिए धन्यवाद के पात्र हो। अगर आप जाग गए तो पूरा अस्तित्व आपपर धन्यवाद बरसाएगा।

मैं चलते फिरते, खाते पीते पैसे कमाते हुए मनुष्य को जागा हुआ नहीं कहूंगी। ऐसे लोग तो केवल सुख, शरीर, पद और धन के संदर्भ में जागे हुए हैं। वे कुछ कदम आगे बढ़ेंगे तो भयंकर अंधकार है उसके सामने। मैं उस अंधकार में से मनुष्य को बाहर निकालना चाहती हूँ। इसके लिए काफी है छोटी सी एक ध्यान विधि की बाती। आपके शरीर रूपी दिए का आधार लेकर, ज्ञान पिपासा के अग्नि से उस बाती को जलाकर अंधकार के पार हो जाओ। और प्राप्त कर लो भीतर के प्रकाश को।

मैं आपको जो ध्यान विधि बताने जा रही हूँ वह विधि बिलकुल सरल फिर भी विशिष्ट है। इस विधि में आपको आपके शरीर में व्याप्त आकाश तत्व पर ध्यान करना है।

मनुष्य भीतर से इतना भरा हुआ है कि उसे बाहर के विशाल आसमान के नीचे बिठा देंगे और उस निरभ्र, स्वच्छ आकाश के तले बैठकर खुली आंखों से उन्हें उस आसमान का दर्शन करने को कहेंगे, तो उसका मन वहाँ भी आकृतियाँ बनाने लगेगा। संकल्प विकल्प से भरा मन खुले अंबर का भी पूरा आनंद नहीं ले सकता है, तो भीतर के आकाश को कैसे प्राप्त कर सकेगा ?

बात थोड़ी कठिन मालूम पड़ती है, परंतु अभ्यास के बाद कुछ कठिन नहीं रहता। रस और अभ्यास दो बात ऐसी हैं कि वे कठिन से कठिन विषय को भी सरल बना देते हैं। किसी भी विषय में रस लेने का मतलब है कि उसको अपना बना लेना। उसके निकट जाना, एक अर्थ में उसमें तल्लीन हो जाना। एक बार आप ध्यान में रस लेने लगेंगे, ध्यान के निकट जाने लगेंगे और ध्यान के होने लगेंगे तो एक क्षण ऐसा आएगा कि ध्यान अचानक आपका हो जाएगा।

ध्यान का आपका हो जाने का अर्थ है – आपमें और ध्यान में अद्वैत स्थापित हो जाना। फिर ध्याता और ध्यान भिन्न भिन्न नहीं रह सकते। और ध्याता की मौजूदगी होने पर भी भीतर अखंड ध्यान ही बचेगा। अनुभूति बचेगी। आप आप रहते हुए भी मन के आपा को खो देंगे।

यहाँ "आप" का अर्थ है आपका बाहरी ढांचा। जीर्ण क्षीर्ण बासी एवं अनावश्यक संस्कारों की बू, बुद्धि की निरर्थक दखलअंदाजी, अहं का अंधकार, अस्त व्यस्त मन, आत्मानुशासन रहित जीवन शैली। जिसका दूसरों को पता नहीं परंतु आप बराबर जानते हो आपको कि सच क्या है ? बराबर ठगते भी हो आपको, क्योंकि धोखापूर्ण जीवन आपको रास आ गया है। और साथ साथ ठगते हो दुनियाँ को भी। जल्दी निकल आओ बाहर इस धोखे में से क्योंकि वहाँ कल्याण नहीं है।

मैं जब आपको कहूँगी कि शरीर के भीतर के आकाश को देखो, तब आपको आश्चर्य होगा। क्योंकि आपको वहाँ आकाश दिखाई ही नहीं देगा। ऐसा क्यों ? क्योंकि स्थूल चीजों को देखते देखते आपकी इन्द्रियाँ, मन और मति इतने स्थूल हो गए हैं कि सूक्ष्म को देखने में वे असमर्थ हो गए हैं। सूक्ष्म को देखने में उसको बहुत तकलीफ होती है। वे नकार देते हैं विधि में उतरना। भागते रहते हैं इधर उधर। थोड़ा चालाक मन दंभ करता रहेगा लेकिन कब तक ? अनाड़ी मन स्पष्ट रूप से अस्वस्थ दिखाई देगा।

मेरे पास ध्यान शिबिरों में आने वाले सब प्रकार के लोग होते हैं। उन्होंने आंख बंद की होती है परंतु साफ साफ दिखाई देता है कि कौन विचलित है। कौन इधर उधर भाग रहा है। कौन ऊब रहा है ध्यान से। और कौन जबरदस्ती कर रहा है अपने साथ ध्यान में उतरने के लिए। कौन दंभ कर रहा है। अब यह मत पूछना कि यह पता कैसे चलता है ? आपको अगर तीसरा नेत्र सहयोग करेगा तो आप भी किसी भी को देखकर उसके बारे में सच सच बताने लगेंगे।

इस विधि में शरीर के भीतर के आसमान का दर्शन करना है। बाहर का आकाश विशाल और दृश्यमान है। भीतर का आकाश तत्व सूक्ष्म है, बाहर के आकाश का दर्शन घर के बाहर निकलकर आंगन में या खुले मैदान में हो जाएगा। परंतु भीतर के आकाश तत्व के दर्शन के लिए शरीर रूपी माटी के महल के खाके के भीतर उतरकर भीतर झांकना पड़ेगा।

आकृति और प्रकृति को भूलकर उस परम सूक्ष्म में प्रवेश करना होगा।

आकाश मनुष्य के लिए पहले से ही आकर्षण का विषय रहा है। अवकाशी ग्रहों को, उपग्रहों को या अकाश में छिपे अंजान विश्व को ढूंढने के लिए नासा और इसरो जैसी अनेक अवकाशी विज्ञान शालाएं काम कर रही हैं।

एक ज़माने में आकाश में उड़ना मनुष्य के लिए स्वप्न था। धर्म शास्त्रों में पुष्पक विमान की बातें सुनकर मनुष्य उत्सुक था विमान बनाने के लिए। और मनुष्य ने अपना यह संकल्प सिद्ध कर लिया। मनुष्य उड़ने लगा आकाश में। एक देश से दूसरे देश में पहुंचने के लिए जब महीने लगते थे वहाँ मनुष्य अब चंद घंटों में पहुंचने लगा।

परंतु मैं चाहती हूँ कि बाहर के साथ साथ मनुष्य भीतर के आकाश की भी यात्रा करे। मैं कहूंगी कि इसरो और नासा की यात्रा से भी यह यात्रा ज्यादा महत्वपूर्ण है। क्योंकि यह यात्रा एक आध्यात्मिक यात्रा है। यह आकाश अति निकट फिर भी ज्यादा कठिन है। क्योंकि वहाँ कोई यंत्र के द्वारा पहुंचने का उपाय नहीं है।

हमारे ऋषि मुनियों ने सिखाया कि वहाँ सिर्फ तंत्र ही काम आएगा। तंत्र शास्त्र ने अनेक बार अंतराकाश और द्वादशांत की बात की है। इस आकाश में आपको स्वयं को आयास करते करते पहुचना पड़ता है सूक्ष्म तक।

आज के मनुष्य ने बाहर के आसमान की सैर करने के लिए और हर प्रकार के सुख भोग आकाश में भुगतने के लिए धन के द्वारा सारी व्यवस्थाएं प्राप्त कर लीं हैं। परंतु अपने भीतर के आकाश में विश्व का कोई भी धनपति ध्यान के बिना प्रवेश नहीं कर पाएगा। धनपतियों से कोई बड़ा है तो वह है ध्यानी।

मैं कहती हूँ कि आज नहीं तो कल परंतु विश्व के धनपतियों को ज्यादा से ज्यादा जरूरत पड़ेगी ध्यान की। क्योंकि मनुष्य जो चाहे उसे दुन्यवी तौर पर सबकुछ प्राप्त कर लेता है तभी उसे पता चलता है कि बाहर की खोज तो पूरी हो गई! मैंने वह सबकुछ पा लिया जो अन्य के पास नहीं था! फिर भी शाश्वत सुख की अनुभूति नहीं हो रही है! अब शाश्वत शांति कहाँ और कैसे मिलेगी ?

ऐसी शाश्वतता की खोज में ही महाराज रघु, हरीशचंद्र और भरत जैसे राजवी संयास लेकर निकल पड़े थे।

सबकुछ पा लेने के बाद उससे मुक्त हो जाने का मजा कुछ और ही होता है। मनुष्य का मन किसी भी चीज से बहुत जल्दी ही भर जाता है। वह हमेशा कुछ नए की खोज में रहता है। यह प्रक्रिया अंतहीन है। क्योंकि सब मन का खेल है।

केवल ध्यान से मन का अंत आ सकता है। मन का अंत होना अर्थात इच्छा, आसक्तियाँ और अनावश्यक संस्कारों का अंत होना। जीव की लौकिक प्रकृति का अंत आना। केवल परमात्मा की उपस्थिति का बोध रहना। फिर प्रकृति रहते हुए भी आप उसके आधीन नहीं रहेंगे। वह दासी की भांति सेवा में रहेगी। मालकिन की भांति नहीं।

सुख भोगों को जबतक पाया ही नहीं है तो छोड़ने की बात ही नहीं उठती है। आप उसी चीज़ को छोड़ सकते है जिसको आपने पाया है। बिना पाए छोड़ेंगे क्या ?

प्राप्ति के बाद ही बोध घट सकता है कि चीजें सुख सुविधा दे सकती हैं। परंतु वह अंतिम खोज या परम लक्ष्य नहीं है। चीजें सम्पन्नता बढ़ा सकती हैं। परंतु पूर्णता नहीं दे सकती। चीजें सुविधा दे सकती हैं, स्वतंत्रता नहीं। जैसे जैसे चीजें बढ़ती जाएंगी, गाड़ियाँ, बंगले, ज़मीन, जागीर, कम्पनियाँ, फैक्टरियाँ, वैसे वैसे आपकी स्वतंत्रता कम होती जाएगी। आपका मन खुश हो इसलिए आपने यह सब फैलाया था। परंतु हालात कुछ ऐसी हुई की मनोरंजन भी हाथ में से निकल गया। और मनोभार बढ गया।

फिर भी लोग क्यों भागते हैं धन और चीजों के पीछे ? इसका एक कारण है, मनुष्य का अहंकार। वह चीजों से भरता रहता है। पद से, प्रतिष्ठा से, धन से अहंकार पुष्ट होता जाता है।

मनुष्य के पास जो कुछ भी आता है उसका आनंद शरीर तो बहुत कम मात्रा में ले पाता है परंतु चीजों का सबसे ज्यादा मजा अहंकार लेता है। दुनियाँ को दिखा देना, प्रतिस्पर्धी को मात देना, परिवार और कुटुंबीजनों में धन के मामले में बड़ा हो जाना और दुनिया को जलाना ...। ये सारी हीनता ग्रंथियाँ, मनोविकृतियाँ और नासमझियाँ चीजों को इकट्ठा करती रहती हैं।

धन पाने के बाद लोग भी बदल जाते हैं। आपके पास धन आ जाएगा तो लोगों का रवैया बदल जाएगा आपके साथ, लोग चालाक हैं। उन्हें पता है कि अगर किसीका अहंकार पुष्ट करके हमारा स्वार्थ सिद्ध होता है तो कर लो! धन भले उसने कमाया, लाभ हमको मिलेगा!

भीतर के आकाश के दर्शन के अभाव के कारण ये सारी माया जाल और आसक्ति का विषचक्र चल रहा है।

जागा हुआ या सोया हुआ परंतु जिसने दुनिया के सारे भोग विलास को पा लिया है, उसके पास जाकर कभी पूछना कि पूर्णता का अनुभव हो रहा है! अगर प्रामाणिक मनुष्य होगा तो कहेगा कि “नहीं”। एक प्रमाणिक दूसरे प्रमाणिक मनुष्य को डिप्लोमेटिक जवाब कभी नहीं देता।

कई बार कुछ आई.ए.एस., आई.पी.एस. अधिकारी एवं उद्योगपतियों से मेरी बात होती है। स्वाभाविक है कि समझदार और थोड़े जागे हुए लोगों को ही मेरे साथ बातचीत करना अच्छा लगेगा। जिसको नींद में ही रहना है ऐसे लोग तो मेरे साथ बात करने का विचार भी नहीं करेंगे।

दुनियां की नजरों में जो सफल लोग हैं ऐसे लोग मुझे कहते हैं कि अब दो चार साल नौकरी के बचे हैं, मरने के पहले आपके पास बैठकर, ध्यान में उतरकर एकबार जानना तो है कि अध्यात्म जगत का रहस्य क्या है ?

कल ही मेरी बात सूरत के डी.डी.ओ. से हुई। ये टेलीफोनिक सत्संग था। मैं उसे बरसों से जानती हूँ। काफी सुलझा हुआ इंसान है। वह उत्सुक है ध्यान में, उसके पास सबकुछ है परंतु परिस्थितियाँ, जिम्मेदारियाँ उसकी आध्यात्मिक प्यास को पूरा नहीं होने देती हैं।

खैर, मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि बाहरी दुनिया से हर तरह से परितृप्त मनुष्य जल्दी प्रवेश कर सकता है भीतर के आकाश में। हमारे जितने भी अवतार और तीर्थंकर हो गए हैं वे सब राजा महाराजा अथवा राजकुमार थे।

हाँ, सभी धनपति ध्यानी नहीं बन सकते। परंतु जो जल्दी जान लेता है सुख समृद्धि पाने के बाद, कि उस सुख में पूर्णता नहीं है, वह मुड़ जाता है अध्यात्म की ओर।

बदल लेता है अपनी दिशा, और पा लेता है परम शांति, सत्य, शाश्वत सुख और पूर्णता को।

प्रिय साधको !

आपके शरीर के भीतर के आकाश तत्व पर आप ध्यानस्थ हो पाओ इसलिए पदार्थ जगत से पार जाना अति अनिवार्य है। और पदार्थ जगत के पार जाने के लिए आपमें एक समझ विकसित हो यह जरूरी है। ऐसी समझ सत्संग से खिल सकती है। इसलिए मैंने इतना सत्संग किया।

आकाश कोई पदार्थ नहीं है, वह एक खाली स्थान है, वह विराट भी है सूक्ष्म भी है। पदार्थों के आकार प्रकार, हलचल और अन्य प्रक्रिया के लिए यह जगह मदद करता है। फिर भी परम साक्षी है। मेरी दृष्टि से तो आकाश तत्व तो एक महासाक्षी है। कुछ भी किए बिना वह आपकी मदद कर देता है।

एक अर्थ में उसका अस्तित्व होते हुए भी वह नहीं है। वह है भी और नहीं भी है। उसका नामरूप होते हुए भी वह अरूप है। और अरूप होते हुए भी आप भिन्न भिन्न स्थान के अनुसार खिड़कियों के अनुसार, द्वार के आकार के अनुसार उसे असंख्य रूप में पा सकते हैं। आधी खिड़की खोलेंगे तो छोटा आकाश, द्वार में से देखेंगे तो थोड़ा बड़ा, मैदान में आ जाएंगे तो इससे भी बड़ा। वह तो महासाक्षी है, परंतु आपकी दृष्टि के अनुसार वह बदलता हुआ नजर आता है।

वह आकाश हमारे भीतर भी है। परंतु पृथ्वी तत्व की भांति वह आपकी पकड़ में नहीं आएगा। ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों का व्यापार इस आकाश की वजह से है।

थोड़ी देर पहले मैंने कहा था कि भीतर के आकाश को यंत्र से नहीं तंत्र से जाना जा सकता है। वह आकाश खाली स्थान के उपरांत भी कुछ है। परंतु उसकी व्याख्या नहीं हो सकती। यह तंत्र अत्यंत सूक्ष्म है। जिसका अनुभव ध्यान के द्वारा हो सकता है। क्योंकि ध्यान भी सूक्ष्म है। सूक्ष्म को देखने के लिए सूक्ष्म की आवश्यकता रहती है।

आप जब भीतर के आकाश पर केन्द्रित करेंगे अपनी चेतना को तब प्रारंभ में तो आकाश कहीं नहीं दिखेगा, आंख मूंदकर भीतर केन्द्रित होंगे तो पहले तो रस, रक्त, मांस, हड्डीयाँ, स्नायु इत्यादि दृष्टिगोचर होगा। क्योंकि आप भीतर के आकाश में कभी स्थिर हुए ही नहीं हैं। आपने कभी कोशिश ही नहीं की थी, कभी सोचा तक नहीं था उस आकाश के बारे में।

संतों ने इस शरीर को माटी का हुजरा कहा। पंच तत्व का पुतला कहा। कांच की पुतृली कहा परंतु ये तो कभी सुना ही नहीं था कि देहाकाश जैसा भी कुछ है।

मैं आपको देहाकाश की ओर ले जाना चाहूँगी। विज्ञान भैरव तंत्र में अंतरतिमिराकाश की धारणा है। परंतु वह बात केवल द्वादश स्थान तक सीमित है। मैं कहती हूँ कि भीतर सर्वत्र आकाश छाया हुआ है। शरीर का एक कोष भी ऐसा नहीं कि जहाँ आकाश न हो। अगर कोष में आकाश (खाली जगह) न होता तो उसमें प्लाज़्मा, प्लेटलेट्स और पानी कैसे रहता ? आकाशतत्व प्रति कोष में, प्रति स्नायु में, प्रति नाड़ी में और हड्डियों के भीतर समाया हुआ है।

अगर वहाँ आकाश नहीं होता तो शरीर में भले कितना भी प्रवाही और वायु हो परंतु खाली स्थान के बिना परिभ्रमित कैसे होती चीजें ? माँ के गर्भाशय में अगर आकाश नहीं होता तो नौ महीने बच्चा पेट में रहता कैसे ? कैसे विकसित हो सकता ? हृदय और फेफड़े में आकाश नहीं होता तो श्वास भरता कहाँ ? किड्नी में आकाश नहीं होता तो प्रवाही तत्वों का फिल्टरेशन कैसे होता ? जठर और आंत में खुली जगह नहीं होती तो भोजन स्वीकार कौन करता ? कलेजे में आकाश नहीं होता तो रक्त संग्रह कैसे होता ?

भीतर के आकाश की वजह से तो अन्य चारों तत्व कार्यान्वित हो सकते हैं। फिर भी वह महासाक्षी है। अग्नि की भांति शरीर में रहते हुए भी वह दिखाई नहीं देता। एक अर्थ में अग्नि से भी सूक्ष्म।

आकाश तत्व अन्य सभी तत्वों को अपने अपने क्षेत्रों में कार्य करने का मौका देता है और उसी आकाश तत्व की वजह से भीतर प्रतिपल नवसृजन होता रहता है। जिसे मोर्डन साइन्स मेटाबोलिज़्म की प्रक्रिया कहती है।

प्रिय साधको !

अब आप शायद तैयार हो गए होंगे भीतर के आकाश तत्व का स्वीकार करने के लिए। उस आकाश तत्व पर ध्यान करने के लिए और आकाश तत्व में विलीन हो जाने के लिए। तो चलो अब तैयार हो जाओ आँखें बंद करने के लिए।

याद रहे बाहर के काम काज करते करते यह ध्यान नहीं करना है। अगर ऐसा करेंगे तो बाहर के कार्य में गड़बड़ पैदा हो जाएगी। आप विक्षिप्त हो जाएंगे। क्योंकि बाहर आकार प्रकार का जगत है। और आकाश आकृति के पार का तत्व। नेत्रों से आकारों में उतरते उतरते निराकार में पहुंचना कठिन हो जाएगा। इसलिए नेत्र बंद करो।

जब भी समय मिले तब आँखें मूंदकर रस, रक्त, हड्डी .... आदि के मध्य में स्थित आकाश को खोज निकालो। प्रारंभ में थोड़ी दुविधा होगी, तकलीफ होगी, मनोयोग खंडित हो सकता है।

भीतर देखते ही आपको पदार्थ नजर आने लगेंगे। परंतु वह सब पदार्थ जिस स्थान में विकसित हुए हैं उस स्थान को पकड़ लो। धीरे धीरे वह खाली स्थान आपकी पकड़ में आ जाएगा। वही है आकाश तत्व, जहाँ कुछ भी नहीं है, सिवाय कि रिक्तता।

प्रारंभ में वह आकाश रक्त रंगीन लगेगा। धीरे धीरे रंग के पार चले जाओ। अति सूक्ष्म में पहुंचते ही निरभ्र, स्वच्छ, शांत, सर्वसाक्षी, प्रकाशित आकाश दिखाई देने लगेगा। और उसके दर्शन होते ही आपके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार तिरोहित हो जाएंगे। क्योंकि अब आप एक ऐसे स्थान पर पहुंच गए हो कि जहाँ कुछ भी नहीं है। तो वे सब कहाँ खड़े रहेंगे ? बस, यही है समाधि।

योगीजन कहते हैं कि भीतर हज़ार हज़ार सूर्य उग निकलते हैं। भीतर परम प्रकाश है। परंतु आकाश के अनुभव के बिना वह अद्भुत दर्शन करेंगे कैसे ? भीतर का सूर्य एक ज्ञान मार्तंड है। आकाश के बिना तो सूर्य का अस्तित्व ही संभव नहीं है। अगर भीतर प्रकाश का दर्शन हो रहा है तो समझ लो कि आकाश का अस्तित्व है। उस आकाश में उतरो और ज्ञान रवि की किरणों से साक्षात्कार कर लो। वही परम सत्य का साक्षात्कार है।

धरणा - ५१

चितादर्शन ध्यान

प्रिय साधको !

मृत्यु एक बहुत बड़ा सुअवसर है एक ज्ञानी के लिए, एक ध्यानी के लिए, एक खोजी के लिए। अवसर इसलिए कहती हूँ कि वह सीखने वाले को बहुत कुछ सिखा जाता है। भारत में एक अघोर विद्या का पंथ चला था। आज तो केवल नाम रह गया है उस मार्ग का। परंतु यह परंपरा सीधी शिव से उतरी है। मुझे यहाँ अघोर मार्ग की बातें नहीं करनी हैं, न तो अघोर पंथ से जुड़ी भ्रमणाओं की आलोचनाएं करनी है। यहां तो केवल उस मार्ग से जुड़ी एक विधि जो मुझे बहुत जंच गई है, उस विधि को लेकर बात करनी है।

डरपोक और विषय, वस्तु एवं व्यक्ति में अति आसक्त जीव के लिए यह विधि काम की नहीं है। फिर भी ऐसा भी कह सकते हैं कि उन्हीं के लिए ही यह विधि विशेष उपयोगी है। इस विधि से गुजरकर ही भयभीत और आसक्तियों से लिप्त मनुष्य मुक्त हो जाएगा।

विधि को समझने के पहले एक बात और करना चाहूंगी, जिसे आप ध्यान से सुनेंगे।

विश्व के नारी समुदाय को काफी बहाने बनाकर धर्म और अध्यात्म जगत से दूर रखने के प्रयास हुए हैं। सच्चा ज्ञानी पुरुष तो ऐसा कभी नहीं कर सकता। परंतु धर्म सत्ता में प्रविष्ट पुरुष मानस की उपज है यह सब।

नारी हर प्रकार से पुरुष से ज्यादा सृजनात्मक, भावनात्मक और सक्षम है। यह एक कुदरती बक्षीस है नारी को। परंतु सौन्दर्य और कोमलता के नाम पर नारी को केवल उपभोग का साधन बनाए रखा, आधिपत्य के भाव से भरे पुरुष मानस ने।

आदिकाल में ऐसा नहीं था। गार्गी शास्त्रार्थ करती थी याज्ञवल्क से। अनेक सभाओं को जीतने वाला और शास्त्रार्थ प्रारंभ के पहले ही अपनी विजय की घोषणा करने वाले याज्ञवल्क को भारी पड़ जाता था गार्गी के प्रश्नों का उत्तर देना।

मैत्रेयी जैसी नारियाँ एक पत्नी का दायित्व निभाती हुई भी समान रूप से ऋषि की आध्यात्मिक साथी भी थी।

ऋषि अगत्स्य की पत्नी ने हादी विद्या का आविष्कार किया था। जरत्कारू एक तांत्रिका थी। बहुत सारे शाक्त तंत्र तो स्पष्ट बताते हैं कि पूरी तंत्र विद्या का उपदेश स्वयं शक्ति ने ही शिव को दिया है। शक्ति ने शिव को चेताया है, प्रबोधा है।

शिव शिष्य बनकर प्रश्न करते हैं और महाअंबा पार्वती उनके संशयों का समाधान करती हैं। देवी भागवत में हिमालय और देवी का आध्यात्मिक संवाद पढ़ने योग्य है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उपदेश करती हुई देवी के वचन प्रत्येक पुरुष को सुनने चाहिए।

उपरांत लक्ष्मी तंत्र, सरस्वती तंत्र, काली तंत्र आदि प्रसिद्ध हैं, हमारी तंत्र परंपरा में। श्यामा उपनिषद् भी अद्भुत है। जैनों में पद्मावती देवी आज भी बड़े आदर के साथ पूजी जाती है। वह एक सिद्धाणी थी और बौद्धो में चौरासी सिद्धों में से चार नारियां सिद्धाणी हैं – लक्ष्मीकरा, इन्द्रभूति, मेखला, मणिभद्रा, जिनको सिद्ध की भांति स्वीकार करना पड़ा है।

जैन के २४ तीर्थंकरों में से मल्लीनाथ एक नारी ही थी, पुरुष मानस ने उसके पीछे परंपरागत शब्द "नाथ" लगाकर नारी शक्ति की विशेष पहचान अदृष्य कर दी। दूसरे अर्थ में उस नारी का उतना उर्ध्विगमन हुआ कि वह पुरुषों की पंक्ति में बैठ गई। वैसे भी किसी भी आत्मा दुनियादारी से ऊपर उठ जाता है तब स्त्री और पुरुष के भेद से उसे कोई फर्क नहीं पड़ता।

समय के साथ भारत की तेजस्विनी, तपस्विनी, प्रभाविता नारी कुछ अहंकारी पुरुषों के तेजोवध का शिकार बन गई और उसके विशेषाधिकार छिन गए। सैंकड़ों वर्ष तक उसके पास से वेदाध्ययन का अधिकार भी छीन लिया गया। रजस्वला के बहाने उन्हें अशुद्ध माना गया।

पुरुष नारी को भुगतता भी गया और उसका तिरस्कार भी करता रहा। ये कैसे धर्म पनपे भारत में कि आज तक नारी जिसके जड़ बंधनों से शोषित पीड़ित और तिरस्कृत हो रही है!

नारी को बरसों से अर्थ शास्त्र से भी दूर रखा गया। देश का अर्थतंत्र सदियों तक पुरुषों के हाथ में रहा। सच में तो घर की देखभाल नारी के हाथ में होते हुए भी यह तंत्र उसके हाथ में नहीं था। – ठीक आज की शासन पद्धति की तरह।

मैंने छोटे छोटे गाँव में और शहरों में देखा है कि चुनाव में नारी के लिए कुछ आरक्षित सीटें होती हैं, उपरांत ग्राम पंचायत और जिला पंचायत आदि में भी। उन सीटों पर आज भी वास्तव में कोई औरत खड़ी नहीं रहती है। परंतु उसे खड़ा किया जाता है। वह औरत जीत भी जाती है चुनाव, सत्ता पर भी आती है, परंतु रब्बर स्टेम्प की तरह। ज्यादातर तो ऐसी महिलाओं के पति अथवा परिवार का पुरुष अथवा गाँव का कोई पुराना मुखिया के हाथ में ही सत्ता की बागडोर रहती है। नारी केवल कठपुतली बन जाती है यहाँ। नारी के साथ ऐसा हर क्षेत्र में हुआ है।

नारी को धर्म, अध्यात्म, राजनीति और अर्थतंत्र से सदियों तक दूर रखके निकृष्ट पुरुष मानस ने भारत की आधी जनसंख्या को हजारों हजारों वर्ष तक पंगु बना दिया। क्योंकि आधा विश्व नारी जनसंख्य का है और आधा नर का।

नारी को खास अधिकारों से दूर रखके पुरुषों ने स्त्री मानस को क्षीण कर दिया। नारी धीरे धीरे घरेलू बनते बनते महाशक्ति में से साधारण औरत बन गई। रोटी पकाना, बच्चे पैदा करना और पालना और पुरुष का मनोरंजन करना; ये तीन काम ही बच गए नारी के लिए।

नारी ने भी सदियों तक देखा कि नारी का कोई खास सम्मान नहीं है तो फिर नारी सिर्फ नर बालक को ही जन्म देने में ही उत्सुक रह गई। नारी को नारी के प्रति नफरत पैदा हो गई। नारी अपने नारी भ्रूण की स्वयं हत्या करने लगी। धीरे धीरे विश्व में नारी जनसंख्या कम होने लगी, विशेष करके भारत में। पूरी सृष्टि का संतुलन बिगड़ने लगा। तब फिर से पुरुषों ने ही कानून बनाया कि भ्रूण हत्या बंद करो। परंतु अपने बद्तर स्थिति को देखकर कन्या जन्म के प्रति नारी समाज के मन में इतनी घृणा भर गई है कि अब फिर से संतुलन साधने में अब समय लगेगा। मेरे पास आने वाली कुछ युवतियाँ तो बच्चे को जन्म देने में ही उत्सुक नहीं हैं। ऐसा क्यों ? ये लंबी शोषण परंपरा का परिणाम है।

समाज के महत्वपूर्ण क्षेत्रों से सदियों तक बहिष्कृत नारी की रगों में से अध्यात्म, साहस, नीतिनिपुणता जैसे गुण अदृश्य होने लगे।

पैसे के आकर्षण से और आवश्यकता की वजह से स्वतंत्र प्रकृति की सक्षम और पढ़ी लिखी महिलाएं धीरे धीरे धन तो कमाने लगीं परंतु अध्यात्म का आकर्षण तो अक्सर मृत:प्राय ही हो गया था, तो ज्ञान की बात तो बहुत दूर रही।

उसका परिणाम आज पूरा विश्व भुगत रहा है। क्योंकि अध्यात्म के बीज भारत में से ही पहुंचे हैं पूरे विश्व में। यूनान की ध्यान विधि हो या जापान की, सूफी विधि हो या ईसाईयों की विधि परंतु सारी विधियों का उद्गम स्थान भारत है।

हाँ, कुछ विशेष प्रतिभावान नारियाँ धर्म के बंधनों को तोड़कर प्रवेश कर गईं धार्मिक आध्यात्मिक क्षेत्र में। आत्मबोध, सत्यानुभव, और अंतरदृष्टि के अभाव में उन्हें धर्म क्षेत्र को कुछ साध्वियाँ जरूर मिली परंतु सिद्ध नारियों का अभाव कायम रहा। मीरा बाई, दया बाई, सहजो, सुखबुई आदि क्रांति करके कुद पड़ी हैं परमात्मा में।

ध्यान मनुष्य को जगा देता है परंतु भारतीय नारी पर जब आध्यात्मिक क्षेत्र के लिए प्रतिबंध थोपा गया तो बाद में धीरे धीरे नारी का रस भी उड़ता गया उस क्षेत्र में से और परिणाम स्वरूप गैर आध्यात्मिक संतानें पैदा होने लगीं।

अंतिम ८०० वर्ष में ८००० पीढ़ि पैदा हो चुकी हैं। औसतन दस साल के बाद पीढ़ी बदलती है। उन ८००० पीढ़ियों तक नारी को दूर रखा गया ज्ञान से, ध्यान से। कोई जागी हुई नारी अपने घर में चुप चाप कुछ ज्ञान विधियों में से गुज़र ले वो अलग बात है परंतु उन्हें उसका प्रशिक्षण देना, उस विषय में सोचना क्षेत्रगत रूप से सभाओं में हिस्सा लेना, अपनी अनुभूति और उपलब्धियों को समान कक्षा के विद्वानों के साथ बांटना, शास्त्रार्थ करना और संशय प्रगट करके संवाद के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना – इन सारी बातों पर प्रतिबंध।

अब आप ही सोचो ८००० पीढ़ी तक जिस नारी को ज्ञान ध्यान का माहौल न मिला हो उसके गर्भ में केवल पंचमहाभूत का पुतला ही पलेगा। बुद्ध, महावीर, राम और कृष्ण जैसे जागे हुए आत्माओं की जन्म लेने की संभावना भारत के पुरुष मानस ने नष्ट कर दी। इस वजह से तो अंतिम २६०० वर्ष में कोई तीर्थंकर, पैयगंबर या अवतार ने पृथ्वी पर जन्म नहीं लिया। विद्वानों ने एक सीमा बांध दी तीर्थंकरों, अवतारों और पैयगंबरों के लिए, २४ पर वे अटक गए। जब नारी के आध्यात्मिक अधिकार छीन लिए गए तब उनको ऐसा ही करना पड़ेगा। महाचेतनाएं पृथ्वी पर उतरेगी कैसे ? कल्कि अवतार घोषित किया गया है, परंतु कब आएंगे इस विषय में कोई स्पष्टता नहीं दी है शास्त्रों ने, कैसे दे सकते हैं ?

क्योंकि क्षीण नारी चेतना के द्वारा महाचेतना का अवतरण होना असंभव जैसा है। और ऐसी स्थिति में ऐसी बातें नियति पर ही छोड़नी पड़ती हैं।

मैं कहती हूँ कि प्रत्येक सदी में एक महाचेतना धरती पर उतरती है क्योंकि आदि अनादि से नारी के रक्त में बहते हुए अध्यात्म को मिटाना इतना आसान भी नहीं है। परंतु विद्वानों ने कह दिया कि २५वाँ तीर्थंकर या अवतार नहीं होगा तो लोगो के लिए वह एक पत्थर में लकीर बन गई। अब कैसे मिटे यह लकीर ? भारत का मानस ही स्वीकार नहीं कर पाएगा किसी नई बात को। क्योंकि व्यासपीठ पर से एक ही बात को हजारों वर्ष से मानव मन में ठोक पीट कर बिठाया जा रहा है। और ऐसे मानव मन कोई नए विचार को, नई संभावना को स्वीकार करने के लिए तैयार ही नहीं है। वह गुलाम बन गया है उसे दी गई पुरानी धारणाओं का।

गुलाम मानस कभी क्रांति नहीं कर सकता, फिर क्षेत्र कोई भी हो, राजनीति हो या अध्यात्म; लेकिन गुलाम मानस क्रांति नहीं कर सकता।

लोग कहते हैं कि आज की संतान उच्छृंखल और स्वार्थी है। कुछ भी समझने को तैयार नहीं है, भोग विलास की प्रेमी ही। मैं कहती हूँ यह सब स्वाभाविक है। ऐसा ही होगा, विलासी ही होगी नई पीढ़ियाँ। क्योंकि भोग के भाव में से ही वे पैदा हुए हैं।

ज्ञानी, ध्यानी के जन्म को तो रोक दिया गया सदियों पहले, नारी का वेदाधिकार छीनकर।

मैं कहती हूँ कि यदि संतान के संस्कार को बदलना है तो पहले माता को बदलना पड़ेगा। मीठे फल चाहते हो तो पहले भूमि का रस–कस युक्त होना अनिवार्य है।

वो दौर भी देखा है, तारीख की नज़रों ने
लम्हों ने ख़ता कीन्ही, सदियों ने सज़ पाई।

कुछ अहंकारी पुरुषों ने मिलकर द्वेषपूर्ण हृदय से नारी के विशेष अधिकारों को छीनकर उसके लिए धर्म के नामपर कुछ कानून बना दिए। वे कानून तो चंद लम्हों में ही बने परंतु वह पुरुष के द्वारा की गई एक अक्षम्य गलती थी। उनकी कुछ क्षणों की गलती की वजह से भारत को और कुछ विश्व के देशों को हज़ारों वर्ष तक सज़ा भुगतनी पड़ेगी और वह सज़ा है – गैर आध्यात्मिक और उच्छृंखल प्रजा का पैदा होना।

भक्ति भाव के क्षेत्र में भावुकता और सहृदयता की वजह से नारी विकसित होती रही, फिर भी आत्मखोज और निरालंब ज्ञान के द्वार बंद होने की वजह से लाखों में एकाद नारी ऐसी बच पाई जिसमें ज्ञान की लौ जलती मिले। ऐसी कुछ अनूठी नारियों की वजह से हर सदी में एकाद आत्मप्रतिष्ठित आत्मा मिलती रही विश्व को। परंतु ज्यादातर तो मंदिर और पूजा पाठ ही बढ़ते रहे, ज्ञान नहीं बढ़ा।

कुछ अद्भुत नारियाँ अपना दिया खुद बन गईं, और बिना किसी आधार से पहुंच गईं। कश्मीर की लल्लेश्वरी, मुस्लिमों में राबिया, पिछली सदी की विमला ताई, एनीबेसन्ट, माता आनन्दमयी और रामकृष्ण की पत्नी शारदामणिदेवी। ये सब असाधारण नारियों के उदाहरण हैं।

परंतु यदि नारी का वेदज्ञान का अधिकार नहीं छीना होता पुरुष मानस ने, तो आज सायन्स और टेक्नोलोजी के तेजस्वी युवकों की भांति ज्ञान और ध्यान से पूर्ण प्रतिभावान, स्वअनुसाशित, विवेकि, जाग्रत और एक समझदार युवा समाज होता भारत के पास और भारत वर्तमान में विश्व के विकसित राष्ट्रों में सांतवे स्थान पर नहीं परंतु पुनः प्रथम स्थान पर होता।

आज की पीढ़ी प्रमाणिक, प्रेमपूर्ण, निर्दंभी और बुद्धिमान है परंतु सजगता, आत्मानुशासन एवं आत्मसंयम का आभाव है। और इसके

लिए इतिहास जिम्मेदार है।

मातृशक्ति को ज्ञान से वंचित रखना ये मेरी दृष्टि से घोर पाप है, सबसे बड़ा अधर्म है, और सामाजिक अपराध है।

नारी को सदियों तक केवल भोगविलास के साधन के रूप में ही उपयोग में ली जाने की वजह से नारी, जीवन के अनेक अद्भुत और सुंदर पहलू उपरांत कुछ कटु वास्तविकताओं से अंजान रह गई। वह घर में रह रह कर ज्यादा कोमल और भीरू बनती गई। मातृत्व का वरदान प्राप्त करने के कारण उसका भाव जगत विकसित होता रहा जिससे भक्ति मार्ग में थोड़ी व्यस्त रही परंतु ज्ञान जगत कुंठित हो गया। धीरे धीरे नारी की जिज्ञासा ही खत्म होने लगी सत्य को जानने की।

ज्ञान के अभाव में स्त्री भीरू बनती गई मृत्यु जैसी घटनाओं से दूर होती गई। समाज की कुछ कटु वास्तविकताओं से वह खुद भी मुंह फेरने की आदि हो गई। धीरे धीरे यह उसकी आदत बन गई। आज नारी फिर से स्वतंत्र हुई है। फिर भी कुछ बातों से वह पलायन कर रही है। धीरे धीरे नारी भी चालाक बन गई। उसने सोच लिया कि कुछ झंझट पुरुषों ने पाली है तो फिर पालने दो। मुर्दे का भार कौन उठाए कांधों पर ! अब तो जो चलता है उसे ही चलने दो। पुरुषों ने हमारे जीवन में से बहुत रस ले लिया, अब थोड़ा रस क्रिया कांड और मृत्यु में से भी भले ले। हमारे अधिकार छीन ही लिए गए हैं तो अब हम रस क्यों लें ? रस से नहीं तो भले औपचारिकता से, परंतु अब तो पुरुषों को ही पूरी करने दो मौत की अंतिम रसमें।

परंतु मूल कारण तो ये ही है कि वह घर में रह रह कर ज्यादा भीरू और कोमल बनती गई। मेरा अनुभव कहता है कि नारी में हर तरह से पुरुष से ज्यादा संभावनाएं पड़ी हैं। और आज की नारी ने यह सिद्ध कर दिया है। परंतु सोलह संस्कारों में भी पुरुष को ही केन्द्र में रखकर जो धार्मिक नीतियाँ बनाई गईं उसने पूरे समाज का नुकसान कर दिया है। वक्त इस नुकसान को कभी नहीं चुका पाएगा।

अब आइए, फिर से हम ध्यान की बात की ओर जाएं। मध्यकाल में अगर नारी के अधिकारों को नहीं छीना होता, मृत शरीर के अग्निसंस्कार विधि में नारी को भी शामिल किया गया होता, अर्थी उठाने में नारी का साथ लिया होता तो असंख्य नारियाँ पहुंच जाती जलती चिता का दर्शन करने के लिए।

क्योंकि भारतीय नारी इतनी सक्षम है कि वह केवल चिता दर्शन नहीं परंतु पुरुष की चिता पर चढ़कर ज़िन्दा जल भी सकती है। उसके साथ कैसी साजिश हुई ! जरा सोचो तो सही ! विधवा की जिम्मेदारी से मुक्त होने के लिए पुरुष मानस ने उन्हें जिन्दा जलाकर सती बनने को प्रेरित किया ! समाज में सती प्रथा लागू कर दी। परंतु बचपन से उसका ज्ञानाधिकार छीन लिया गया। सतीत्व ज्ञान और ध्यान से आता है, हत्या या आत्महत्या से नहीं।

नारी का भावुक हृदय ध्यान को जल्दी उपलब्ध हो सकता है। पूरा ध्यान शास्त्र तीव्र भावना पर खड़ा है। देखने में कोमल दिखती हुई नारी संकल्प शक्ति में और साहस में पुरुष से बहुत आगे है। अगर ऐसा नहीं होता तो वह प्रसूति की पीड़ा सहन करके बच्चे को जन्म नहीं दे सकती।

सन्तान की भावना करने में उसका नारित्व है। और कष्ट सहन करके नौ महीने के बाद बच्चे को जन्म देने के दृढ़ संकल्प में उसका पुरुषत्व है।

कोई तर्क कर सकता है कि आजकल तो सिजेरियन से प्रसूति कराई जाती है। परंतु मैं कहती हूँ कि विज्ञान की खोज अगर नारी को पीड़ा और मृत्यु से बचा सकती है तो उसका उपयोग अनिवार्य संजोगों में अवश्य होना चाहिए। परंतु एक बात तो निर्विवाद है कि नारी की संकल्प में विशेष शक्ति होती है।

परमात्मा ने मातृत्व की शक्ति नारी को क्यों दी ? क्योंकि कुदरत को शायद पता होगा कि पुरुष अपने बच्चे के लिए अपने पेट की चीर फाड़ नहीं करवा सकता। कुछ खास और महान बातें एवं बलिदान के लिए ईश्वर ने नारी का सृजन किया है। पुरुष के चाहने पर भी कुछ विशेष बातों का श्रेय उसे नहीं मिल सकता।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि नारी के पास ज्यादा भावपूर्ण हृदय होता है और संपूर्ण ध्यान साधना भाव जगत पर खड़ी है। भावना उपनिषद्, भावप्रकाश और रुद्रयामल तंत्र की धारणाओं में भाव को ध्यान का मूल आधार बताया है। और नारी भावनाओं की खदान है। इसलिए में कहती हूँ कि नारी का प्रवेश ध्यान में जल्दी हो सकता है।

नारी के संदर्भ में कुछ विशेष बातें इसलिए करनी पड़ीं कि वह परम्परागत बाधाओं की वजह से कुछ खास ध्यान विधियों से अछूती रह गई है। आज की नारी स्वतंत्र हो रही है।

मैं नहीं चाहती हूँ कि अब फिर से वह दुर्घटना उसके साथ घटे। मैं ज्यादा से ज्यादा माताओं को ध्यान से उन्मुख करना चाहती हूँ।

इसलिए मैं चाहूँगी कि माताएं मेरी बात पर विशेष ध्यान दें।

ध्यान परंपरा एक ऐसी परंपरा है कि जहाँ सारी परंपराओं के बंधन टूट जाते हैं। और मनुष्य का तार सीधा जुड़ जाता है परम चेतना के साथ।

ध्यान तंत्र निषेधों से ऊपर उठकर एवं मनुष्य जीवन के सभी पहलुओं का स्वीकार करके उसे उसके के पार जाने की कला सिखाता है।

विरोध के स्वर में ध्यान के राग को आलापना असंभव है। ध्यान विधियों में केवल स्वीकार के स्वर ही निखर उठते हैं। ध्यान में काम को भी ध्यान बना देने का आदेश है और क्रोध को भी।

नासमझ धार्मिक लोगों को यह बातें अरुचिकर लगती हैं परंतु वास्तव में ध्यान अतिधार्मिक है। वह धर्म और अधर्म से पार जाकर केवल सत्यज्ञान की उपलब्धि में ही मानता है। और वही परम धर्म है। सत्यज्ञान के बिना सारे धर्म अधूरे हैं।

समाज किसी भी की मृत्यु पर शोक मनाता है। ध्यान मृत्यु को उत्सव समझता है, एक अवसर मानता है। वह मृत्यु से भी कुछ सीख लेने को कहता है, वह जलती चिता से भी कुछ सिखाता है।

आजकल गैस चेम्बर और इलेकट्रीकल सुविधा होने से मृत शरीर के परंपरागत संस्कार की विधि से लोग दूर होते जा रहे हैं। परंतु भारत के समझदार ऋषियों ने मृत शरीर के अग्नि संस्कार करने की जो बात बताई है वह अतिवैज्ञानिक है।

प्रिय साधको !

चिता दर्शन ध्यान एक अति महत्वपूर्ण विधियों में से एक है। इस ध्यान को आप अपने घर में या एकांत में कभी भी नहीं कर सकते। इस ध्यान के लिए आपको स्मशान में जाना पड़ेगा। वहाँ बैठना पड़ेगा, प्रतीक्षा करनी पड़ेगी किसीकी चिता लगने की। इतना समय कहाँ है आज के मनुष्य के पास ! वास्तव में सुविधाएं बढ़ने के बाद भी वह जिम्मेदारियों से घिरा हुआ है। वह जिम्मेदारियाँ आभासी हैं, वास्तविक नहीं। हकीकत में घिरा हुआ है विचारों से, दबा हुआ है इच्छाओं से।

फिर भी अगर विधि में रस है तो कुछ महीने निकालने पड़ेंगे। यह विधि मृत्यु के पार ले जाने वाली विधि है। इसका मतलब यह नहीं करना कि आपके शरीर की मृत्यु नहीं आएगी। परंतु इतना जरूर होगा कि आप मृत्यु के भय से और जीवन की लालसा से मुक्त हो जाएंगे। मेरी दृष्टि से यही सही मुक्ति है। यही है संसार से सही अर्थ में पार उतरना।

आसक्ति का भार संसार में डुबाता है। एवं निरासक्त भाव ज्ञान की नौका में बैठकर संसार से पार उतर जाता है।

प्रिय साधको !

जलती चिता को देखो। देखते रहो, दृश्य जुगुप्सा प्रेरक लगे तो भी भागना नहीं, हाड मांस को जलते हुए देखते जाओ। लोगों के रोने पीटने में साक्षी बने रहो। साक्षी बने रहो मृत शरीर के जलने में। साक्षी बने रहो मांस, मेद की जलने की बू में। तीव्र भाव करो कि जलती हुई लाश में और आप में पंचतत्व की दृष्टि से कोई फर्क नहीं है।

याद रहे ! मैं यहाँ बार बार “देखना” शब्द प्रयोग भले करूं परंतु विधि का नाम है चिता दर्शन ध्यान। अर्थात आपको जलती चिता को केवल देखना नहीं है उसका दर्शन करना है। देखना स्थूल होता है, दर्शन सूक्ष्म होते हैं। देखना आँखों से होता है, दर्शन अंतर से होते हैं। देखना एक इन्द्रिय से होता है, दर्शन समग्रलक्षी होते हैं। देखने की क्रिया केवल बाहरी दृश्य का बोध कराती है परंतु दर्शन से अंतरबोध घटित होता है।

प्यारे साधको !

इस ध्यान विधि में जलती चिता को देखकर सत्य ज्ञान को उपलब्ध हो जाना है। देखते रहो चिता को, सब लोग जलती चिता को नहीं देख सकते हैं। आपने शायद देखा हो तो चिता के पास दो पांच खास लोग रहते हैं, बाकी लोग स्मशान में भी इधर उधर हो जाते हैं। ऐसा क्यों ?

क्योंकि मनुष्य केवल बनती हुई बातों का स्वीकार कर सकता है। बिगड़ती बातों का स्वाकीर उससे नहीं हो सकता है।

माँ के गर्भ में एक आकृति बनकर बेटा आ बेटी के रूप में जन्म लेती है तब उसका स्वीकार होता है। उत्सव होता है, आनन्द होता है। जब जीवन के सृजन और आगमन का स्वागत है तो विसर्जन के क्षणों की उपेक्षा क्यों ? यह अज्ञान है।

जलती चिता का दर्शन आपके स्वीकार भाव को विकसित करेगा। एक अर्थ में कहूँ तो मृत्यु से बड़ा नुकसान कोई नहीं है। मृत्यु के कारण मनुष्य के हाथों में से जीवन छिन जाता है। एक अवसर हाथ से निकल जाता है।

अगर जलती हुई निष्प्राण काया को देखकर आप जाग गए, अगर एक बार मृत्यु का स्वीकार कर लिया, उस नुकसान को झेलना

एकबार सीख लिया तो फिर हर कठिन बातें सहज और स्वीकृत हो जाएंगी आपके लिए। और आपको अनुभव हो जाएगा कि जगत स्वप्न है, मिथ्या है। शंकराचार्य जैसों ने भी अनुभव से ही इस सत्य को जाना था।

चितादर्शन ध्यान में स्थिर होने के बाद आपकी अवस्था में और आद्यशंकराचार्य की अवस्था में कोई फर्क नहीं रहेगा।

मैंने मेरे जीवन में एक ही बार चिता दर्शन ध्यान किया है। वह ध्यान प्रथम और अंतिम बन गया। फिर मुझे बार बार जलती चिता के सामने बैठने की जरूरत नहीं रही। मैंने पा लिया कुछ सत्यों को उस ध्यान के द्वारा।

मेरे पिताजी की तीव्र इच्छा थी कि उसके अंतकाल के बाद उनके अग्निसंस्कार मेरे हाथों से हों। उन्होंने भ्राताओं से समहमति पत्र ले लिया था और इच्छा व्यक्त कर दी थी कि मुझे उनके अग्निसंस्कार का अधिकार दिया जाए। उन्होंने मुझको बचपन से ही वचन से प्रतिबद्ध किया था कि सत्संग, प्रवचन, ध्यानयज्ञ या ज्ञानयज्ञ के लिए विश्व में कहीं भी भले जाऊं परंतु उनकी मृत्यु के समाचार से सबकुछ छोड़कर आ जाऊं और उनके अंतिम संस्कार मेरे हाथों से करूं।

संयोग भी कुछ ऐसा हुआ। करीब ग्यारह साल पहले हमारे जूनागढ़ आश्रम में ध्यान शिबिर थी। शिबिर के २४ घंटे पहले वडोदरा में पिताजी ने शरीर छोड़ा, जुनागढ़ से निकलकर मैं पहुंची वडोदरा और दूसरे दिन चाणोद नर्मदा तट पर पिता के शरीर को अग्निसंस्कार दिए। उनकी अंतिम इच्छा के अनुसार पटाखे छोडे, लोगों में मिठाई बांटी, नर्मदा में स्नान करके गीले वस्त्रों के साथ ही मैं वापस लौटी जूनागढ़ ध्यान शिबिर के लिए। शिबिर तीन दिन चली। ध्यान और सत्संग का खूब आनंद लिया। ब्रह्मभोजन के स्थान पर ध्यानोत्सव में साधको को दूधपाक, पूरी का भोजन कराया। और इत्तफाक से शिबिर में प्रवचन का विषय था "मृत्यु क्या है ?"

खैर, मुझे बात करनी है – "चिता दर्शन ध्यान" पर। मैंने चाणौद–नर्मदा तट पर पिताजी के शरीर को जलता हुआ देखा, अनासक्त भाव बनाए रखना कठिन इसलिए था कि चिता मेरे पिताजी की थी। सभी संताने में से मुझे सबसे ज्यादा प्यार दिया था उन्होंने। मेरे सन्यास के बाद भी वे निवृत्ति के बाद पंद्रह साल तक मेरे आश्रम में रहे। ऐसी स्थिति में एक पुत्री के लिए साक्षीभाव रखना बहुत कठिन था परंतु मेरा सन्यास काम आ गया उन क्षणों में। हम पिता पुत्री दोनों का सन्यास सार्थक हो गया।

उनकी अर्थी बांधी गई तब हमने उनके शरीर से भगवे वस्त्र नहीं उतारे थे। उन्होंने मेरे पास ही सन्यास ग्रहण किया था। एक आवरण पर दूसरा आवरण चढ़ा है ऐसा मानकर सबको कह दिया था कि उनके शरीर पर से भगवे वस्त्र दूर नहीं किए जाएंगे। अब तो इसी रंग के संग ही उस आत्मा की यात्रा आगे बढ़ेगी।

चिता तैयार करने में उनके पुत्रों के साथ मैं भी लगी थी, दूसरों के लिए मेरी भूमिका एक दायित्व पूरा करना और वचन निभाने तक की ही थी। परंतु मेरे लिए वह घटना एक महाध्यान का अवसर थी। मैंने उनके देह के दायें पैर के अंगूठे पर आग रखी। उन्होंने मुझसे वचन लिया था कि उनकी मृत्यु पर मुझे रोना नहीं है। मैंने होश के साथ वचन निभाया। भीतर से या बाहर से मैं नहीं रोई। शायद वह मेरी एक आध्यात्मिक परीक्षा थी, उनकी बहुएं रोती थीं, छाती पीटती थीं, कोई गिरती थी ...... क्या क्या नहीं हो रहा था !

मैं साक्षी रही। जिसे जो मानना है वो माने, जिसे जो कहना है कहे, मुझे मेरे सन्यास में खरा उतरना था, मेरे भीतर का ध्यानी बराबर जागता रहा पूरी घटना के दौरान।

परंतु उस ध्यान ने मुझे बहुत कुछ दिया। उस ध्यान ने कुछ ऐसा दे दिया जिसे पूरी दुनिया पूरे जीवन में नहीं दे सकती है।

प्यारे साधको !

मुझे मेरी बात नहीं करनी है। मेरी घटना एक आधार है, आपको ध्यान विधि समझाने का। इसे एक दृष्टांत समझ लेना। हम आधार कही से भी ले सकते हैं। परंतु ज्ञान तो आपका ही है। आपका आत्मबोध जगे वही महत्वपूर्ण है आपके लिए।

मैं आपसे कहती हूँ कि देखते रहो जलती चिता को। आरंभ से अंत तक देखो अग्निसंस्कार की विधि को। माता, बहन, बेटी को सम्मिलित करो इस विधि में। जाग्रति के साथ, हिम्मत के साथ और धैर्य के साथ देखते रहो जलती चिता को। आत्मसंयम बनाए रखो। लोगों के साथ रोने धोने में मत जुड़ना।

जिस क्षण में आप आत्मसंयमी बन गए, जिस क्षण में आप भयमुक्त हो गए तो समझो कि आप आत्मविजयी बन गए।

मनुष्य दूसरों को हिम्मत देता रहता है परंतु वक्त आने पर खुद भयभीत हो जाता है। दूसरो को मोहमुक्त होने का उपदेश देता रहता है परंतु अपने स्वजन को खोकर संयम नहीं रख पाता।

प्यारे साधको !

जिसने अपनी कमज़ोरियों पर विजय पा ली वह आत्मविजयी बन गया। आत्मविजयी का कार्य विश्व विजयी से भी कठिन है।

देखते रहो जलती हुई चिता को। एक पूर्ण शरीर कैसे राख में परिवर्तित हो जाता है। उस प्रक्रिया को बहुत करीब से और सूक्ष्मता से देखो। एक के बाद एक तत्व खो रहा है। कहाँ गया सबकुछ ? पदार्थों के विघटन को भी देखते रहो। अंत में पृथ्वी तत्व (राख) तो थोड़ा ही बचा, तो और सबकुछ कहाँ गया। जल गया ! जलकर कहाँ गया ? आपका गहन चिंतन शुरु हो जाएगा।

अपनी अपनी सृष्टि में मिल गए चारों तत्व। अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश मिलकर एक आकृति बनी थी, जिसे कार्यक्षेत्र के हिसाब से सृष्टि में नर, नारी, नपुंसक नाम मिला था।

मृत्यु के कारण पांचों तत्व फिर से बिलग बिलग होकर अपने अपने स्वरूप में समा गए। माटी माटी पर पड़ी रही। कुछ राख के रूप में कुछ हड्डी के रूप में। कुदरत के द्वारा दिया हुआ शरीर कुदरत में समा गया। खेल खत्म हुआ। जगत के रंग मंच पर एक पात्र की भूमिका पूरी हुई। एक पात्र पर परदा गिर गया हमेशा हमेशा के लिए। लीला समाप्त हो गई।

जगत घोंसले का एक परिंदा ऐसा उड़ा कि पता नहीं कि कहाँ गया। फिर कभी लौट के वापस नहीं आया।

आप भी एक दिन ऐसी ही उड़ जाएंगे। बिना पंख के। किसीको नहीं दिखाई देगा कि यह लंबा चौड़ा शरीर कहाँ गया।

यह ध्यान विधि आपमें बोध जगाएगी। चिता, अगर स्वजन की हो तो विशेष रूप से जाग्रत रहो। शोक के प्रवाह में मत बहने दो स्वयं को। जीवन है कुछ तत्वों का संघटन। मृत्यु है उन्हीं तत्वों का विघटन। दोनों को देखो, देखने वाला संघटन है, जलने वाला विघटित हो रहा है। उस क्षण में स्थिर रहना ही साक्षी भाव है।

वह क्षण मन को सारी असक्तियों से मुक्त कर देता है। सजग अवस्था में मृत्यु का सहज स्वीकार हो जाता है। वह क्षण अभय वरदान की प्राप्ति का क्षण है। ऐसा साधक जन्म मृत्यु से पार हो जाता है। वही शिवत्व है।

धारणा - ५२
मृतदेहदर्शन ध्यान

प्रिय साधको !

अगर आप मृत शरीर का दर्शन कर पाओ तो उस घटना को एक अवसर की तरह लेना। मेरे शब्दों को समझने की कोशिश करना। यहाँ मृत शरीर को देखना नहीं है, उसका दर्शन करना है। दर्शन में भाव होता है, प्रेम होता है, भक्ति होती है, उपासना वृत्ति होती है, दर्शन में तल्लीनता होती है। दर्शन में समग्रता होती है, दर्शन में दिव्यता होती है, दिव्य का ही दर्शन किया जाता है, स्थूल को तो सिर्फ देखा जाता है। दर्शन में कुछ क्षणों का समर्पण होता है और वहाँ दर्शन करने वाला एक क्षण के लिए भी निष्ठा के साथ कहता है कि मैं तेरे सिवाय कुछ नहीं देखूंगा।

आपको प्रश्न हो सकता है कि मुर्दे में कैसी दिव्यता। मैं कहती हूँ, मृत देह को तो आपको माध्यम बनाना है। उसके दर्शन के द्वारा आपको किसी दिव्य तक पहुंचना है।

आप मंदिरों में जाते होंगे, वहाँ चारों और आँखें भटकाते भटकाते भगवान के दर्शन करने वालों के दर्शन को मैं दर्शन नहीं कहूंगी। जब दर्शन का प्रारंभ होता है तब दर्शन करने वाले में एक तल्लीनता उतरती है। सच्चे दर्शन में अन्य सबकुछ खो जाता है, वह दर्शन फिर इष्ट की मूर्ति का हो या किसी व्यक्ति का, ये मेरे लिए गौण है। मैं इतना ही जानती हूँ कि दर्शन के भाव से अथवा भक्ति की तीव्रता से स्थूल में भी दिव्यता उतरने लगती है।

मृत शरीर तो देखने के लिए कहीं रास्ते पर भी मिल जाएगा, परंतु मृत देह का दर्शन करना, उस दर्शन की क्षमता होना और उसके दर्शन से कुछ पा लेना ये बहुत अलग बात है।

क्योंकि मनुष्य सुंदर को प्रेम करता है, असुंदर को नहीं; परंतु मैं कहूंगी कि प्रेम के नेत्र से किसी भी चीज को देखेंगे तो वह सुंदर बन जाएगी। लोगों ने मजनू को पागल मान लिया था। लैला एक सांवली सी लड़की थी, बड़ी साधारण लड़की थी, उसके लिए मर मिटने के लिए तैयार मजनू को किसीने कहा कि लैला में ऐसा क्या है कि तू पागल हो गया है उसके पीछे ! तब मजनू ने जवाब दिया था कि अगर लैला को देखना है तो मजनू की आँखों से देखो।

कहने का तात्पर्य यह है कि तीव्रता और दर्शन भाव मृत्यु को भी सुंदर बना सकता है। ये कोई कविता की या कल्पना की बातें नहीं हैं। ये

सब, मैं मेरे अनुभव से बता रही हूँ।

आपके लिए मृत देह भी ध्यान का माध्यम बन सकता है अगर आपकी दृष्टि ने दर्शन की क्षमता प्राप्त की है तो। यह विधि एक मुश्किल फिर भी अद्‌भुत ध्यान विधि है।

आपको होगा कि मुर्दे में क्या होगा दर्शनीय ? मैंने पहले ही कहा कि दर्शन के लिए दृष्टि चाहिए। लोगों के पास आँख है परंतु दृष्टि तो ज्ञान–ध्यान के द्वारा अथवा गुरु द्वारा अथवा संत वचन से प्राप्त होती है।

जब आदमी चलता फिरता हो तब एक घूमता फिरता माटी का मंदिर जो परमात्मा के सूक्ष्म वास की वजह से मनमोहक लगता है और चलते फिरते प्रभु के इस देहरूपी मंदिर के लिए परमात्मा को धन्यवाद दो कि जिन्होंने इस शरीर में निवास करके उसे अद्भुत बना दिया।

विश्व के किसी भी कम्प्युटर से श्रेष्ठ सुंदर और अद्भुत कोम्प्यूटर कितना भी कीमती हो परंतु एक कम्प्यूटर में से दूसरा कोम्प्यूटर पैदा नहीं हो सकता। परमात्मा ने तो किसी भी सोफ्टवेर – हार्डवेर इन्जीनियर की मदद के बिना दो शरीर में से तीसरा शरीर जन्म ले पाए ऐसी करामात कर दी ! तो इस जीवन, जीवन्तता और आनंद के लिए धन्यवाद दो परमात्मा को।

घूमते फिरते मिट्टी के पुतले का भी दर्शन करो, धन्यवाद अदा करो और निष्प्राण पुतले को भी देखकर कुदरत को धन्यवाद दो। मुर्दे को देखकर सोचो कि कितनी अद्भुत शरीर रचना ! कितना साथ दिया इस शरीर ने !

आपके पास कोई अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश पांचों तत्वों को रख दे और आपके पास अगर वैज्ञानिक और रचनात्मक मानस है तो शायद आप कोई उपकरण बना सकते हैं, खिलोना बना सकते हैं, परंतु इतनी परफेक्ट रचना नहीं हो पाएगी।

जब कभी मौका मिले तब मृत देह को निकट से देखते रहो। उसका रंग, रूप, आकार....... और गौर से उसकी रचना को निहारकर धन्यवाद दो कुदरत को। अदृश्य रहकर दृश्य को बनाया और वही रंग रूप पूर्ण शरीर नष्ट हो जाने के बाद अदृष्ट रूप से पुन: पंचतत्व में विलीन हो जाने की करामत भी की।

कुदरत कभी भी कुछ भी खोती नहीं है, कुछ गवाँती नहीं है, वह केवल रूपांतरित करती रहती है और इस तरह से स्वयं पूर्ण रहती है।

मृत देह का दर्शन करके भी जब आपके भीतर से कुदरत के लिए धन्यवाद निकले तब वे क्षण आपके लिए बन जाएंगी साधना और मृतदेह का दर्शन करते करते एक ऐसा क्षण आए कि धन्यवाद देने वाला भी अदृश्य हो जाए तब वह बन जाएगा ध्यान।

मैं कहती हूँ कि ज़िन्दा शरीर में परमात्मा का देखो और मुर्दे में उसकी गहन रचना को। यह दोनों को देखने की जब क्षमता आ जाएगी आपमें, तब आपके लिए दोनों प्रेरक बन जाएंगे। मैं कह सकती हूँ कि शरीर विज्ञान के संदर्भ में काम करने वाले डॉक्टर, प्रोफेसर, नर्स और विद्यार्थी का ज्ञान के विश्व में जल्दी प्रवेश हो सकता है।

कुदरत की अजीबोगरीब संरचना को अत्यंत करीब से देखने का अवसर उन्हें ज्यादा से ज्यादा प्राप्त होता है। अस्पतालों में ज़िन्दा आदमी से लेकर मुर्दे तक उनका लगातार संबंध रहता है।

मैं प्रत्येक ध्यान प्रेमी को कहूँगी कि अगर संभव है तो कम से कम एक बार पोस्टमोर्टम की विधि जरूर देखनी चाहिए। वहाँ मनुष्य शरीर के अंतिम सत्य का साक्षात्कार होता है। देहाभिमान और रूपाभिमान कितना निरर्थक है इस बात का शीघ्र बोध घटता है।

जीवन का और परमात्मा का मूल्य मनुष्य की समझ में तब ही आता है जब शरीर निष्प्राण हो जाए।

खुली आंख, खुले मन और स्पष्ट बुद्धि से देखो मृत शरीर को। तुरंत समझ में आ जाएगा कि मृत्यु में बुद्धिमानों की बुद्धि काम नहीं करती है और मृत्यु के बाद आदमी का दिमाग बुद्धि चलाने योग्य नहीं रहता।

जब भी मौका मिले, आपको पता चले कि किसी स्वजन की या संबंधी की मृत्यु हो गई है तो एक क्षण भी गंवाए बिना चले जाओ वहाँ। क्योंकि एक बार स्मशान ले जाने के लिए शब को बांधकर तैयार कर दिया तो फिर मृद देह के दर्शन के लिए और इस ध्यान विधि के लिए आपको ज्यादा समय नहीं मिल पाएगा।

एक दूसरी बात का भी ध्यान रहें चिता दर्शन ध्यान में और इस ध्यान में ज्यादा फर्क नहीं होने पर भी फर्क है।

लोग स्वार्थी हैं, जिन्दा आदमी के पास बैठना पसंद करते हैं परंतु शब के पास कौन बैठेगा ? जिन्दा शरीर का एक दिन शब में रूपांतरित होना यह उसकी नियति है। जब आप मृत देह के सामने बैठते हो तब उसमें आपको आप ही नजर आने लगेंगे। जीवनभर सुने हुए शास्त्रीय सत्य तुरंत समझ में आने लगेंगे।

आपको मृत शरीर को देखने के साथ ही विचार आने लगेंगे कि जो आदमी एक दिन किसीको रुला सकता था, हंसा सकता था, मदद कर सकता था, परेशान भी कर सकता था, सच्ची झूंठी नीतियाँ चला रहा था, हर प्रकार के भोग भुगत रहा था, धन और पद आदि का मालिक था,

क्या वही आदमी मेरे सामने पड़ा है!

उसे थोड़ी देर के बाद लोग बांधकर स्मशान में ले जाकर जला देंगे परंतु वह शरीर कुछ नहीं कर सकता।

जब आप एक वयस्क मृत देह को बहुत देर तक देखते रहेंगे तब आप अचानक जाग जाएंगे और आपमें बोध जगेगा कि जो मेरे सामने पड़ा है इससे ज्यादा मैं कुछ भी नहीं हूँ। मृत्यु क्षण को मैं नहीं रोक सकता हूँ, मेरे सुंदर शरीर को भी ऐसे ही जला दिया जाएगा। इस चिंतन के क्षण में सत्य ज्ञान घटित हो जाता है। वही क्षण है जागने का, वही क्षण है सुख–दुख में साक्षी रहने का।

स्मशान में उठाकर ले जाने के बाद शरीर को जला देते हैं परंतु शरीर कुछ भी क्यों नहीं कर सकता? क्योंकि वह आदमी हमें केवल शरीर के रूप में दिख रहा था। शरीर तो मात्र माध्यम था। परदे के पीछे तो मन, मति और अहंकार डोरी–संचार कर रहा था। भीतर बैठे हुए परमात्मा तो सर्वसाक्षी थे। और चुपचाप सब देख रहे थे।

प्रभु को जब लगता है कि अब यह घर ज्यादा जर्जरित हो गया अथवा रहने लायक नहीं रहा तब प्रभु प्रयाण कर जाते हैं। जो प्रयाण कर जाता है उसे दुनिया प्राण नाम से जानती है और कहती है कि प्राण चले गए। प्राण की गैरमौजूदगी में मन, मति, अहंकार साधनहीन हो जाते हैं। और अपने संस्कार के अनुसार कोई और साधन की खोज में लग जाते हैं।

शरीर तो केवल अतिवाहक है। शरीर तो कुछ करता ही नहीं है। रूप और आकार के कारण हम मान लेते हैं कि यह शरीर के कारण हुआ। मनुष्य की पहुंच शरीर तक की ही है। वह शरीर को ही पहचानता है। परंतु याद रहे शरीर केवल अतिवाहक है। अतिवाहक का अर्थ क्या है? जरा समझ लीजिए।

शरीर के द्वारा आत्मा का अतिवहन होता है। आत्मा के अतिवहन का अर्थ है – एक शरीर में से निकलकर दूसरे शरीर में प्रवेश करना।

राजकुमार गौतम की महाभिनिष्क्रमण की घटना में चार दृश्य जो कारणभूत थे उनमें से एक दृश्य था मृत शरीर को देखना। आचार्य अश्वघोष ने "बुद्ध चरित" में उस घटना का अद्भुत वर्णन किया है। कुछ लोग जब एक मृत शरीर को सुंदर वस्त्र में लपेटकर, बांधकर फूलों से पालकी सजाकर कांधों पर उठाकर रोते हुए ले जा रहे थे स्मशान की ओर तब यह दृश्य राजकुमार गौतम ने देख लिया। वैसे तो राजा शुद्धोधन ने मना फरमाई थी कि राजकुमार की नजरों के सामने दुख का एक भी दृश्य नहीं आना चाहिए। क्योंकि गौतम के जन्म के समय एक भविष्यवेत्ता ने कह दिया था कि इस बालक का भविष्य है संन्यास। नियति को कोई नहीं टाल सकता।

तब शुद्धोधन ने विपरीत निर्णय ले लिया। मोह और अहंकार हमेशा सत्य से विपरीत जाते हैं। वे वास्तविकताओं का, सत्य का और नियति का सहज स्वीकार नहीं कर सकते।

एक पिता का मोह और राजा का अहंकार और आग्रह कि राजकुमार तो पिता के साम्राज्य को ही संभालता है। किसी राजा के पुत्र का भिक्षु बनना तो अनुचित है। राजकुमार की अनिकेत और अकिंचन स्थिति के विचार मात्र राजा के अहंकार को ठेस पहुंचा रहे थे।

फिर तो महाराज शुद्धोधन गुप्त रूप से संतों से और ज्ञानियों से मिलते रहते थे और पूछते रहते थे कि वैराग्य कैसे प्राप्त होता है? उन्हें बार बार दो ही जवाब प्राप्त होते थे। एक तो दुख से, दूसरा ज्ञान से।

मनुष्य सत्य को उपलब्ध न हो इसलिए लोग, आपके ही लोग कैसे कैसे कीमिया लड़ाते हैं! इन बातों को जानना और बार बार स्मरण करना कल्याणकारी है। ऐसी बातों को समझकर मनुष्य जागता रहता है, दुनियां से सचेत रहता है। राजकुमार गौतम को सजग न होने देने के लिए उसके पिता ने ही ऐसा किया था, ऐसा नहीं आज भी काफी सारे युवक युवतियाँ ऐसे हैं जिनमें संभावनाएं पड़ी हैं। वे आत्माएं सन्यास के लिए ही हैं परंतु माहौल उन्हें जागने नहीं देता। आपके जाग जाने में बहुतों को भिन्न भिन्न रूप से नुकसान होता है। आपके सोए रहने में उनका स्वार्थ और अहंकार पुष्ट होता है।

महाराजा शुद्धोधन ने ऐसी व्यवस्था करवाई थी कि राजकुमार गौतम को गलती से भी दुख का साक्षात्कार न करना पड़े। और ज्ञान, वैराग्य की झलक भी न मिले। निर्दोष गौतम के अज्ञान को अकबंद रखने का यह एक कपटपूर्ण आयोजन था। उसके चारों ओर सेवा में सुंदरियाँ। भांति भांति के पेय पदार्थ, शराब, हर प्रकार के भोग विलास के साधन, वैभवी शयनखंड में सुंदर पत्नी यशोधरा, घूमने फिरने के लिए खास रास्ते और बाग बगीचे, वहाँ कोई भी हृदयद्रावक दृश्य उसकी नजरों के सामने न आए जिसकी खास तकेदारी भी।

गौतम संसार में भी उतरा, एक पुत्र भी हुआ परंतु उसे प्रतिपल हो रहा था कि मैं इन सबके लिए नहीं हूँ। कोई नया रास्ता, नई दिशा उसे पुकार रही थी।

एक बार उसने छंद नाम के सारथी को कहा कि मेरे रथ को इस रोज़–ब–रोज़ के माहौल से कहीं दूर ले जाओ, यहाँ मेरा दम घुंट रहा है।

प्रिय साधको!

जिस व्यक्ति में जागने की संभावना पड़ी है। उसे सुलाए रखने के लिए कितने भी प्रयत्न करो सब व्यर्थ जाएंगे। जब निद्रा पूरी हो गई है तब स्वप्न की भी संभावना नहीं। फिर तो एक ही उपाय है – जागना।

भीतर से जो जाग रहा है उसे बेहोशी का माहौल देंगे तो वह माहौल उसके भीतर घुटन पैदा करने लगता है। मैं आपको इशारा कर रही हूँ। जब आपके साथ भी कुछ ऐसा हो तो जल्दी छोड़ देना माहौल को, वह पलायन नहीं है परंतु आत्मकल्याण के लिए उठाया हुआ समझदारी पूर्ण एक निर्भय कदम है।

भीतर जल जल कर आप बाहर का माहौल कभी भी आनंदित नहीं बना पाएंगे। कुछ बातें सिर्फ कविताओं में चल सकती हैं, आदर्शों की बात सबके लिए प्रेरणा नहीं बन सकती। आप कोई शम्मा नहीं हैं, आप एक जीती जागती स्वतंत्र इकाई हैं।

आपकी अंतर की प्रसन्नता से बाहर प्रसन्नता फैलेगी। आपके जलने से बाहर भी उसकी प्रतिक्रिया दिखाई देगी। मैं कोई लिखी सुनी बात नहीं कह रही हूँ, मैं सिर्फ मेरा अनुभव बाँट रहीं हूँ आपके साथ।

गौतम की नियति को राजा भी नहीं बदल सका। तो साधारण मनुष्य की बात क्या करें। छंदक सारथी काफी हद तक समझता था गौतम की मन:स्थिति को, उसने नियति को सहयोग कर दिया और गौतम को रथ में बिठाकर निकले नगर के राजमार्गों पर। थोड़े दूर निकलते ही गौतम ने चार दृश्य देखे।

उन चारों में से मुझे यहाँ एक ही दृश्य की बात करनी है। जो इस ध्यान विधि से संलग्न है। वह दृश्य तीसरा दृश्य था। शब को सजाकर उसके स्वजन विलाप करते हुए उसे स्मशान ले जा रहे थे।

गौतम एक संतान की पिता बन गए तब तक उसे पता नहीं था कि जगत में मृत्यु जैसा भी कुछ है। फिर भी मैं कहूंगी कि गौतम बड़े भाग्यवान थे, बहुत जल्दी जाग गए। गौतम को भ्रम में रखने के सारे तरीके आजमाए गए थे। जवानी तक वे अंधेरे में ही थे, फिर भी कहती हूँ कि बहुत जल्दी जाग गए। मैंने तो दस दस संतानों के पिता को भी अजाग्रत अवस्था में ही मरते हुए देखा है।

गौतम ने सारथी को पूछा कि यह कैसा दृश्य है! ये लोग स्वजन को सजाकर भी ले जा रहे हैं और रोते भी हैं। दुनिया का विरोधाभास शायद पहली बार गौतम ने इस तीसरे दृश्य में देखा। सारथी काफी समझदार था। सत्यभाषी, स्पष्ट वक्ता और निडर भी रहा होगा। राजा के मनाई हुक्म के बावजूद भी उसने गौतम के सामने मृत्यु की दु:खद घटना का राज़ खोल दिया।

कवि अश्वघोष ने बड़ा प्यारा वर्णन किया है इस घटना का। सारथी ने गौतम को कहा कि जिसे सजाया गया है और लोग जिसकी डोली की भांति अर्थी कांधे पर उठाकर ले जा रहे हैं, वह आदमी मर गया है। उसके स्वजन उसे स्मशान पर उसके शरीर को जलाने के लिए ले जा रहे हैं। और जो सजावट दिखाई दे रही है, वह मुर्दे के शरीर पर लादी गई अंतिम सजावट और एक औपचारिकता मात्र है।

दूनियाँ लाशों को भी सजाती रहती है! उसके पीछे रोती भी है। उसे जलाती भी है और मृत भोजन के नाम से विविध वानगियों की जयाफ़त भी उड़ाती है।

गौतम के लिए मृत्यु एक नई बात थी। गौतम ने पूछा कि सब लोग मर जाते हैं? छंदक ने कहा – हाँ। गौतम ने बड़ा नाजुक और अंतिम प्रश्न छेड़ दिया – "मैं भी मर जाऊंगा?" सारथी ने कहा – "नि:संशय कालवशेन भावि।"– हाँ, आपकी मृत्यु भी नि:संशय है। प्रत्येक का भावि काल के वश है। जो जन्मा है उसकी मृत्यु निश्चित और अनिवार्य है। जवाब सुनते ही गौतम के मन में एक शाश्वत प्रश्न उठा कि हमेशा हमेशा के लिए मृत्यु से मुक्त हो जाने का उपाय क्या है?

उसके भीतर आध्यात्मिक क्रांति का आरंभ हो गया। फिर क्या हुआ इस बात को किसी और ध्यान विधि में करेंगे। यहाँ इस ध्यान विधि में जितना उपयोगी था उतना बताया।

राजकुमार गौतम आज के मनुष्य से ज्यादा सहृदय, संवेदनशील और जन्मजात कुछ आध्यात्मिक गुणवत्ता लेकर धरती पर आया था। सुंदर कपड़े और पुष्पों से सजाई हुई लाश मात्र को देखकर वह जाग उठा। मृत्यु की बात को सुनकर वह जाग उठा परंतु आज का मनुष्य!

आज तो हर दो पांच दिन में रास्ते पर से किसी न किसी की अर्थी गुजरती है। लोग मुंह फेरकर या देखा अनदेखा करके निकल जाते हैं, आदमी धीरे से बचकर। स्वजन की मृत्य में भी ऐसे लोग देर से जाना चाहते हैं।

राजकुमार गौतम साहसी था। आज का मनुष्य आध्यात्मिक क्षेत्र में और सत्य के साक्षात्कार में नपुंसक जैसा हो गया है। वह सत्य से मुकाबला नहीं कर सकता। मौत की कुछ रस्में निभाने के लिए वह औपचारिक रूप से जुड़ जाता है सगे संबंधियों की भीड़ में। उसे दिखाना पड़ता है कि किसीकी मृत्यु से वह दुखी है। वास्तव में वह रो– धोकर नाटक करता है।

मृत्यु के वक्त पर शोरगुल मचाकर लोग मृत्यु के गांभीर्य से, उसकी भयानकता से और वास्तविकता से बचना चाहते हैं। वे इतना हंगामा

मचा देते हैं कि मृत्यु बेचारी कुछ कहना चाहती थी परंतु उसे सुनने के लिए कोई तैयार नहीं है। मुर्दे को जला देने के बाद शोक सभा प्रार्थना सभा, शांति सभा सब नाटक होते रहते हैं। परंतु जिस क्षण में शांति रखने जैसी थी उसी क्षण को लोग अशांति से भर देते हैं।

हकीकत में मनुष्य मृत्यु से डरता है। उन्हें अपनी मृत्यु का भय सताने लगता है। उसको भी सबकुछ छोड़कर चलेजाना पड़ेगा! – ऐसा विचार आने लगता है। दूसरे की मृत्यु देखकर वह चिंतित हो जाता है कि जीवनभर किए हुए संग्रह का क्या होगा ?

इस शरीर को खूब संभाला लेकिन मृत्यु के बाद उसे लोग जला देंगे और वह कुछ नहीं कर पाएगा। ऐसे विचारों से भयभीत मन रोने लगते हैं, चिल्लाने लगते हैं। कभी कभी परिवार में मोहासक्त मनुष्य, "अपना स्वजन भी इसी तरह चले जाएंगे तो मेरा क्या होगा ?" – ऐसे विचार से दुखी होकर रोने लगता हैं।

कुछ लोगों को खोए हुए स्वजनों की याद आती है। तब वे उसकी याद में रोने लगते हैं। और कुछ को बोध होता है कि मरे हुए व्यक्ति को संभाला नहीं। और अचानक चला गया। अब तो भूल सुधर भी नहीं सकती! ऐसे लोगों का मन अपराध भाव से भर जाता है और निरर्थक पश्चाताप से रोने चिल्लाने लगते हैं।

परंतु ऐसे लोग मृत्यु से कुछ शाश्वत बोध नहीं लेते हैं। कोई भी व्यक्ति वास्तविक दु:ख मुक्ति नहीं चाहता है। दुख मुक्ति सुख की हाज़री से नहीं घटती परंतु केवल जाग जाने से घटित होती है।

वास्तविक दु:ख मुक्ति सत्यबोध जगने से होती है। ध्यान में है दु:खमुक्ति, समाधि में है, शांति में है, शाश्वत की खोज में है।

वह शाश्वत खोज मनुष्य को जन्म के पार ले जाती है। ऐसा खोजी अपनेआप मृत्यु के पार हो जाएगा। परंतु यह शाश्वत क्षण ध्यान के द्वारा प्राप्त होगी। वह क्षण महामृत्यु की होगी। फिर बार बार छोटी छोटी मृत्यु का सामना नहीं करना होगा।

प्यारे साधको!

योगी भी रोता है और भोगी भी रोता है। योगी जागने के लिए रोता है, उसके अश्रु शाश्वत के विरह में बहते हैं। और भोगी के आंसू नाश्वंत के लिए बहते हैं। कबीर कहता है कि –

सुखिया सब संसार है, खाए और सोवे।
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोए।

... ये योगी के अश्रु हैं।

पूर्ण रूप से जाग जाने के बाद तो अज्ञान की वजह से अंधेरे में भटकी हुई दुनियाँ के लिएभी करुणावान ज्ञानी संत की आंख अश्रु से भर आते हैं, ऐसे अश्रु बड़े पावन और मूल्यवान हैं।

हमारे यहाँ जब किसी की मृत्यु होती है तब बच्चों को इधर उधर भेज देते हैं। क्यों ? क्योंकि मरा हुआ व्यक्ति जब अचेतन हो जाता है तब बच्चे उसके बारे में और मृत्यु के बारे में प्रश्न करने लगते हैं। माँ बाप के पास उनके प्रश्नों के सही उत्तर नहीं होते। और सही उत्तर हैं भी तो वे देना नहीं चाहते हैं। क्योंकि संभव है कि गौतम की भांति शायद पूछेगा कि "मैं भी मर जाऊंगा।" तब मोहग्रस्त माँ बाप कहते हैं कि ऐसा नहीं बोलते......, जाओ खेलो। हमारे समाज में बचपन से सत्य से दूर जाने का उपदेश दिया जाता है अपने बच्चों को।

पता नहीं मेरी बात कितने लोग पचा पाएंगे। परंतु मैं तो कहूंगी कि परिवार में किसी भी की मृत्यु हो तब सारे परिवारजनों को मृत शरीर के सामने शांति से बैठकर दो घंटे मृत देह दर्शन ध्यान करना चाहिए। हमारे समाज में इस ध्यान का प्रारंभ होना चाहिए। यह एक परंपरा बन जानी चाहिए। ध्यान विधि पूरी होने के बाद ही समाज में प्रचार करना चाहिए कि किसकी मृत्यु हुई है।

मृत्यु की घटना को एक मौका समझना चाहिए। ऐसा मौका मिले तो गंवाना नहीं, पंचमहाभूत का शरीर जीवन का एक अहम भाग है। उसको पंचमहाभूत में मिल जाने के पहले जीवन के इस प्रथम और अंतिम माध्यम का दर्शन करो। उस साधन को धन्यवाद दो जीवन का साथ निभाने के लिए। दुनियाँ के संघर्ष में यथासंभव टिके रहने के लिए।

मृत्यु की ताकत अद्भुत है। मृत्यु सहसा सारा अज्ञान छीन लेती है। अहंकार को मिटाने के लिए मृत्यु संजीवनी बन गया। मृत्यु ने अचानक आकर सबकुछ चपेट में ले लिया। एक साथ सबकुछ छीन लिया। और मनुष्य को उसकी औकात बता दी। बरसों तक कोई साधू, संत, सूफी, औलिया या फकीर नहीं कर पाए ऐसा चमत्कार मृत्यु ने एक क्षण में कर दिया। उस मृत्यु को धन्यवाद दो।

कुछ लोगों को मेरा यह सुझाव विचित्र लगेगा। ज्यादातर लोग विरोध ही करेंगे इस ध्यान विधि का, क्योंकि उन्हें जागना नहीं है। क्योंकि उनका रस ध्यान में नहीं है, मान पान में है। आजकल लोग मौज, मस्ती, पिकनिक और अंताक्षरी को ध्यान कहते हैं।

मैं कहती हूँ मौज–मस्ती करो खूब करो परंतु ध्यान में भी समग्र रूप से उतरो। तब आपकी मौज कायम बनी रहेगी। आपकी मस्ती

अखंड रहेगी।

लोग तो मरे हुए से जल्दी छुटकारा पाना चाहते हैं। उनको ध्यान में बिलकुल रस नहीं है। उनका रस मृत व्यक्ति की मिलकत में है। दुनियां स्वार्थी और क्षणजीवी है, मुर्दा बहुत कुछ सिखा जाता है अगर आपकी तैयारी हो कुछ सीखने की तो। परंतु लोग कुछ भी सीखना नहीं चाहते हैं। और नहीं सीखने जैसा इतना सब सीख लिया है कि उनमें अब कहीं जगह ही नहीं बची है सत्य को समझने की या कुछ नया सीखने की।

प्यारे साधको !

आपको प्रश्न उठ सकता है कि “आपने कभी ध्यान किया है मृत देह पर ?” हाँ, कई बार किया है। मैं अमरेली सिविल अस्पताल में पढ़ रही थी, तब मृत्यु की घटना का दर्शन बार बार होता था। अभ्यास के लिए पोस्टमोर्टम भी देखना पड़ता था। अस्पताल में कई लोगों की मृत्यु होती थी। जब भी मुझे मौका मिले तब कुछ क्षण मैं निकाल लेती थी उस पर ध्यान करने को, वह ध्यान चलते फिरते करना पड़ता था। क्योंकि मैं एक विद्यार्थी थी। वहाँ ट्रेनर की खास जिम्मेदारियाँ होती हैं, तो बैठकर तो ध्यान नहीं हो पाता था, परंतु बच्चे, बूढ़े और जवान की मृत्यु, हत्या, आत्महत्या या अकस्मात से हुई मृत्यु …… हर प्रकार की मृत्यु का दर्शन मैंने बहुत निकट से किया है।

मैं वहाँ होस्टेल में थी तब मुझे ध्यान और आध्यात्मिक विषयों का अध्ययन करने का मौका ही नहीं मिलता था। रोटी कमाने के लिए जो पढ़ने आई थी ऐसी मदहोश और नौजवान लड़कियाँ बेचारी कैसी समझ सकती मेरी अवस्था को ! वे मेरे रहन सहन का मजाक उड़ाती रहती थीं। होस्टल पर पहने हुए मेरे भगवे वस्त्रों को देखकर वे चिढ़ती थीं और मुझे चिढ़ाने की कोशिश भी करती थीं। पढ़ाई के वक्त को बाद करके मेरे कमरे में मेरी आध्यात्मिक पढ़ाई लिखाई की प्रवृत्तियाँ चालू रहती थीं। अज्ञान की वजह से कुछ लड़कियाँ बहुत विक्षेप खड़ा करती थीं मेरे अध्ययन में। परंतु एक बात मेरे ध्यान में आ गई थी कि वे बहुत डरपोक थीं।

हमारी होस्टेल के पास ही कुछ कदमों की दूरी पर पोस्टमार्टम रूम थी। पी.एम. के लिए किसी शब को लाया जाता था तभी वह रूम खुलती थी। वे लड़कियाँ बहादुर थी केवल शरारत करने में। पी.एम. के रूम के पास से गुजरते वक्त कांपती थीं। दौड़कर भाग जाती थीं।

मुझे रास्ता मिल गया मेरी शांति का, मैं मेरा कमरा छोड़कर, पी.एम. रूम की छत पर बैठकर ध्यान और पढ़ाई करती रहती थी। डर की मारी वे वहाँ नहीं आ सकती थीं। जहाँ लाशों की रोज चीरफाड़ होती थी उस कमरे की छत पर बैठकर मेरा ध्यान और अध्ययन अच्छा चलता रहता था। मुझे एक बात का पता था कि जिंदा आदमी किसी को परेशान कर सकता है। मुर्दा कुछ नहीं कर सकता। मैंने पी.एम. रूम की उस छत पर बहुत कुछ पाया है।

इतना ही नहीं, सन्यास के बाद भी मैंने पिताजी के अंतिम संस्कार मेरे हाथों से करने का वचन दे रखा था। ये बात मैंने पहले बता दी है। मेरे मृत पिता के शरीर के पास बैठकर ही पूरी रात मैंने बाहर गाँव से आने वाले लोगों की प्रतीक्षा की। बैठे बैठे मेरा शरीर थक गया, मैंने घंटों तक उनके मृत शरीर को देखा। उस शरीर को देख देखकर मैं मुस्काती थी, बैठी बैठी कुछ जोक कर रही थी। शायद उस वक्त लोगों ने मुझे बहुत बेशर्म और कठोर माना होगा। परंतु वह मेरे लिए एक विधि थी, मैंने मृत देह से कुछ बातें भी की। अनुत्तर में से कुछ उत्तर आते थे, जिसे मैं ही सुन सकती थी और मैं ही समझ सकती थी। मृत देह का हाथ मेरे हाथ में लेकर मैंने उस शरीर को भाव पूर्वक और ज्ञान से देखा। सबकुछ वैसे का वैसा था, केवल प्राण नहीं थे। बैठे बैठे सुबह के करीब पांच बजने आए। मेरा शरीर भी बहुत थक गया था। क्योंकि जूनागढ़ से वडोरदरा पांच घंटे की यात्रा करके आई थी। घर की अन्य स्त्रियों के पास जाकर बैठना मुझे उचित नहीं लगा। मैं पिताजी के शब के पास ही लेट गई। मुझे मेरा धैर्य और क्षमता को कसौटी पर चढ़ाना था। मैं शांति से सो गई। कोई डर नहीं, कोई शोक नहीं। मुझे एक बात का आनंद था कि मैंने जब जूनागढ़ में पिता की मृत्यु के समाचार पाए तब इस समाचार को सुनकर कुछ साधक जो पिताजी से परिचित थे, रोने लगे थे। परंतु मैंने साक्षीभाव जगाए रखा था। वहाँ से वडोदरा आई तो परिवार की औरतें रो रही थीं। पिताजी से कुछ लेना देना नहीं था ऐसे लोग भी रो रहे थे ! परंतु मैं स्थिर और शांत थी। मेरा कर्तव्य पूरा करने के आनंद से ज्यादा आनंद था मेरे साक्षित्व का। ऐसा साक्षीभाव बने रहना यह भी कोई गूढ अनुग्रह का ही परिणाम था। परंतु उस घटना से मुझे पता चल गया था कि शिव का स्मशान वास, चिता के भस्म का लेप और शिवत्व की अवस्था …. आदि का रहस्य क्या है ?

शिव ने स्मशान को क्यों पसंद किया था अपने निवास के लिए ? इस बात का आध्यात्मिक राज़ मैंने पा लिया, जो अवर्णनीय है।

प्रिय साधको !

आप सबको मृतदेह दर्शन ध्यान विधि में ले जाना यह इस ध्यान मंदिर में संभव नहीं है। हाँ, आप सबको लेकर मैं स्मशान में जाऊं और दिखाऊं मृत शरीर को तो कुछ हो सकता है। परंतु आखिर मैं कब तक आपके साथ ! आपकी साधना आप अपने बल पर करना सीख लो। मौका मिलते ही बैठ जाओ चुपचाप मृत व्यक्ति के शरीर के पास।

किसीकी मृत्यु के समय आपको संवेदना शून्य नहीं बन जाता है, परंतु ध्यान से सारी संवेदनाएं आपके भीतर स्वतः मुड़ जाएंगी। दूसरे के साथ बहती हुई संवेदनाएं अब आत्मकल्याण के लिए आपके प्रति बहने लगेंगी। उसकी दिशा बदल जाएगी। और जब ऐसा होगा तब आपको आपसे ही मदद मिलने लगेगी। आपको अचानक पता चलेगा कि मैंने दूसरों के लिए बहुत ध्यान दे लिया। परंतु मेरे प्रति ध्यान देना चूक गया था।

मेरे अनुभव से मैं कह सकती हूँ कि अपने भीतर ध्यान देकर आप दूसरों की मदद विशेष रूप से कर पाएंगे। वह मदद केवल सहानुभूति या वस्तुओं की नहीं होगी, किसी खोखले आश्वासन के रूप में नहीं होगी परंतु एक जीवंत शक्तिपात होगा।

मृत दर्शन ध्यान विधि में बैठने के बाद इधर उधर जो कुछ भी हो रहा है उसके प्रति बिलकुल ध्यान मत देना। देखते रहो मृत शरीर को, निश्चेतन शरीर को देखते देखते मन की सारी गतिविधियाँ अपनेआप अदृश्य हो जाएंगी। मृत देह में ऐसी ताकत है कि उसके दर्शन अगर आप समग्रता से करेंगे तो फिर भविष्य की कोई योजना आप पर हावी नहीं हो पाएगी।

भूत और भविष्य सब मिट जाएगा, बचेगा केवल वर्तमान। एक अर्थ में चेतन होते हुए भी आप निश्चेतन हो जाएंगे। मरे हुए को मरकर ही समझा जाता है। परंतु यहाँ आपको शारीरिक रूप से नहीं परंतु आध्यात्मिक रूप से मरना है।

ध्यान रहे, मरने का विचार मत करना। निर्विचार अवस्था ही एक प्रकार की मृत्यु है। और वही क्षण नूतन जन्म की जन्मदात्री भी।

देखते रहो मृत शरीर को, करते रहो अखंड दर्शन। जब तक संभव हो। मन, मति, अहंकार, अपने आप गिर जाएंगे, और वही क्षण हैं परम ज्ञान की। उस क्षण में आप प्रतिपल घटती हुई मृत्यु को भी देख पाएंगे।

आत्मदृष्टा बनकर आप मृत्यु के स्वामी बन जाएंगे। मृत्यु आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाएगी, फिर तो मृत्यु सिर्फ एक पड़ाव की भांति रहेगी आपके लिए। एक अंतिम पड़ाव, जहाँ आप नहीं मरेंगे। केवल आपका शरीर विसर्जित होगा। आप चाहें तो भी नहीं मर सकते। क्योंकि आप तो अरूप अनन्त, निराकार, और वृहद्शक्ति का अंश हैं।

ऐसे साधक के जीवन के अंतिम क्षण मोक्ष का द्वार बन जाते हैं। इसी संदर्भ में मेरी ही रचित एक रचना मृत्यु तो है मोक्ष द्वार की कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं –

झांक झांक कर खिड़कियों से
हृदय कभी नहीं भरता था,
दीवारों की आड़ में मुझको
अंबर छोटा लगता था।

चाहे छूटे घर का आंगन
चाहे दरों दीवार टूटे,
महाकाश के दर्शन हेतु
चाहे सब संसार छूटे।

वैसे तो मृत्यु है अजय पर
उस पर जो तुम जय चाहो,
उतरो अपने अंदर साधक
परमात्मा से मिल जाओ।

मरण धर्म है शरीर का तो
प्रेम से उसको मरने दो,
कह दो मुल्ला पंडितों को
स्वर्ग का लालट छुटने दो।

कुछ भी नष्ट नहीं होता है
महा ध्वंस भी हो जाए,
पुनर्गठन है, पुनर्सृष्टि है

नवरचना को होने दो।

संसार पेड़ के पंछी हम
डाली पर पल भर बैठे हैं,
फिर उड़ जाए तो रोना क्या ?
मृत्यु तो स्थानांतर है।

नहीं चिल्लाओ नहीं डराओ
हम मूरख या मूढ नहीं,
संतो ने भेद बता ही दिया
साधो अब मृत्यु गूढ़ नहीं।

यहाँ मैं नहीं, यहाँ तू नहीं
यहाँ सिर्फ चेतना बहती है,
'मैं' - 'मैं', 'तू' - 'तू' है अहंकार वह
मरता है तो मरने दो।

हर कर्म कांड, तस्बी माला
पूजा मंदिर और मस्जिद से,
प्रतिदिन प्रतिपल बढ़ता ही गया !
उस अहंकार को मरने दो।

देहाभीमान कुलाभिमान
शब्दाभिमान पदाभिमान
धन मान पान मिथ्याभिमान
मृत्यु आने से मिटता है।

दो धन्यवाद तुम मृत्यु को
ये अहं पीड़ा भी कैसी थी ?
जिसको मिटा सका ना कोई
दुःखदायक वह ऐसी थी।

शरीर तो केवल अतिवाहक
साधन हेतु रोना क्या ?
'मोहिनी' अंतर से तुम जागो
ममता में सब खोना क्या ?

धरणा - ५ ३

रुद्रतांडव ध्यान

प्रिय साधको !

ध्यान विधि कहती है कि प्रकृति के अति रौद्र रूप का और भीषण तांडव का दर्शन करके जगत मोह से निवृत हो जाओ। वह क्षण

साक्षित्व का क्षण है।

परंतु प्रकृति तो बहुत ही प्रेमपूर्ण है, दयालु है। वह कुछ करती ही नहीं है। वह तो दासी है। करने वाला कोई और ही है। वह और कौन ? यह मत पूछना। वही रहस्य है। सूफी संत उस रहस्य के प्रति अंगुली निर्देश करते हुए कहते हैं कि –

"तुम एक गोरख धंधा हो।"

ये प्रेम की भाषा है। प्रेम से कुदरत को दिया हुआ एक ताना है। उसके रहस्य को आप उसमें उतरकर ही जान सकते हैं। और उसमें उतरने की कला का नाम है – ध्यान।

अस्तित्व में जो सर्जन विसर्जन होता रहता है वह प्रकृति के द्वारा केवल दृश्यमान होता है। पुष्प का खिलना और मुरझाकर बिखर जाना ये सब पुष्प की, पौधे की, या बगिया की इच्छा से नहीं होता, वह सब तो अस्तित्व के कुछ अनलिखित गुप्त नियमों के आधार पर हो रहा है।

प्रकृति तो शुभ अशुभ के प्रगटीकरण के लिए निमित्त मात्र बनती है। मनुष्य प्रकृति से ज्यादा सक्षम है, पंचतत्व के उपरांत उसके पास ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, बुद्धि और आत्मा सबकुछ है।

जड़–चेतन की तुलना में मनुष्य के पास कुछ सविशेष शक्तियाँ हैं। फिर भी वह अस्तित्व से बड़ा नहीं है। वह नदी पर, सागर पर और आसमान पर भले राज कर ले परंतु अस्तित्व में जो घटने वाली घटनाएं हैं, वह घटकर ही रहेंगी।

ध्यान विधि कहती है कि विनाश के दृश्यों को देखो तो उसपर ध्यान करने लगो। परंतु विनाषक घटनाएं तो बहुत कम घटती हैं। कहाँ जाएंगे उसपर ध्यान करने के लिए ? तब विज्ञान भैरव तंत्र कुछ कल्पना के आधार पर ध्यान में उतरने का मार्ग बताता है।

उसके अंतर्गत कुछ विधियों से संलग्न कुछ विशेष विधियों का प्रयोग करके मैंने कुछ अनुभव पाए हैं। कुछ विधियाँ एक दूसरे से बहुत निकट लगती हैं फिर भी धारणा के स्तर पर भिन्न हैं।

रुद्र संहार ध्यान में आपको तीव्र धारणा बनानी है कि प्रकृति ने अति रौद्र रूप धारण किया है, उस रूप में शिव भयानक तांडव कर रहे हैं और शिव के तांडव की भयानक मुद्राओं के साथ साथ प्रकृति में महाविनाश घट रहा है।

आपको तीव्र भावना करनी है कि उस महाविनाश में आपका जो कुछ भी है उसका सर्वनाश हो रहा है। देखते जाओ, देखते जाओ, देखते – देखते करते जाओ तीव्र, तीव्रतम और तीव्रतर धारणा सर्वस्व के विनाश की।

आप कहेंगे कि इससे क्या होगा ? ये तो विध्वंसात्मक विचार है ! ना, ये विचार नहीं है। यह तो आपको ध्यान विधि के रूप में दिए गए एक विचार पर आपके द्वारा सर्जित एक कल्पना चित्र है। आप कहेंगे कि ऐसे चित्र से क्या होगा ? कल्पना से खींचे हुए दृष्टिचित्र कैसे मदद कर पाएंगे ? मैं कहती हूँ कि यह दृष्टिचित्र आपकी मदद अवश्य करेंगे।

पहले तो यह विधि आपके मन के साथ काम करेगी। और मन विसर्जित हो जाने के बाद आपके भीतर का शिवत्व प्रगट हो जाएगा।

महत्वपूर्ण बात तो यह है कि मनुष्य का मन नाशवंत चीजों से इतना गहरा नाता जोड़ बैठा है कि वह अपनी मान ली हुई वस्तु और व्यक्तियों को छोड़ने का विचार तक नहीं कर सकता। तो फिर उसके सर्वनाश की बात तो बहुत दूर रही, मनुष्य वस्तु और व्यक्तियों में सलामती का अनुभव करता है परंतु वह अज्ञान है। मनुष्य की सच्ची रक्षा तो ज्ञान ही कर सकता है। मनुष्य को अगर कोई सही अर्थ में सलामत और सुरक्षित एवं शांत तथा सुखी रख सकता है तो वह सिर्फ ज्ञान ही रख सकता है।

सत्यज्ञान के सिवाय मनुष्य कहीं भी सुरक्षित नहीं है। परंतु ध्यान के अभाव से पीड़ित मनुष्य को इस परम सत्य का बोध नहीं है। ऐसी स्थिति में मेरे जैसा कोई समझाने की भी कोशिश करता भी है तो वह हंस देता है और कहता है कि अरे भाई ! छोड़ो बड़ी बड़ी बातों को। अपना घर–धंधा संभालकर बैठो।

परंतु मैं कहती हूँ कि कहाँ तक ? हजारों हजारों वर्ष से मनुष्य घर–धंधा संभाल कर ही बैठा है, परंतु वह वास्तव में संभाल पाया है ? किसीका घर चला गया, किसी का धंधा, कोई खुद चला गया तो किसी के बीबी बच्चे। अरे आप तो संभाल कर बैठे थे ना ! बिलकुल चिटककर बैठे थे, फिर भी हाथ से बहुत कुछ निकल गया !

कितना ध्यान रखा था फिर भी समय को नहीं पकड़ पाए। उन सब चीजों का ध्यान रखने के लिए तो आपने कभी ध्यान के प्रति ध्यान ही नहीं दिया। फिर भी सत्ता, कुर्सी, घर, धंधा काल के प्रवाह में बहता ही गया; मनुष्य कुछ भी नहीं रोक पाया।

मैं कहती हूँ कि जिसे रोकने का उपाय ही नहीं है, उससे चिटकना क्या ? आप सबको तो नहीं रोक पाओगे, कम से कम खुद को तो रोक लो। मोह की बाढ़ में से खुद को बचा लेने की कला है ध्यान।

मैं नहीं कहती हूँ कि घर धंधा छोड़ दो। सबकुछ चलने दो परंतु साथ साथ वह सब नाशवंत है इस बात का भी बोध रखो। ऐसे बोध का

जन्म ध्यान के द्वारा होगा। ध्यान में उतरने के बाद आज का आनंद आप आज ही ले पाएंगे। ध्यान में कल पर कुछ भी नहीं है। सबकुछ आज ही है। वर्तमान में ही है, इसी क्षण में है। ध्यान में उतरने के साथ ही संदेह वृत्ति के स्थान पर भीतर सम्यक भाव का जन्म होगा।

लोग कहते हैं कि ध्यान से घर - धंधा छूट जाएगा। ऐसा कहने वाले अज्ञानी हैं। ध्यान से तो सबकुछ और सुंदर और सुरीला बन जाएगा। आपके सोचने का और जीने का ढंग बदल जाएगा। ध्यान से आप मुक्त होते जाएंगे आसक्तियों से, मन की इच्छाओं से। तब संसार में रहते हुए भी मनोभार कम हो जाएगा।

आप स्वतंत्रता का अनुभव करने लगेंगे। यह एक आध्यात्मिक स्वतंत्रता है। जैसे जैसे आप उस स्वतंत्रता का स्वाद लेंगे, वैसे वैसे आपको उसमें ज्यादा रस आने लगेगा। फिर तो आप दूसरों को भी स्वतंत्रता देने लगेंगे।

जैसे जैसे आप अन्य को स्वतंत्रता देंगे वैसे वैसे माहौल आनंदपूर्ण बनता जाएगा। क्योंकि फिर आप न गुलाम रहेंगे, न दूसरों को गुलाम बनाएंगे। माहौल में जब सब खुश होंगे तब स्वाभाविक है कि शांति और आनंद बढ़ेंगे ही।

स्वतंत्रता का लोगों ने बहुत गलत अर्थ कर दिया है। स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि पति की कल्ब में चला और पत्नी किसी और क्लब में। स्वतंत्रता का अर्थ है कि पत्नी को देर तक सोना है तो पति चाय बनाकर पी लेगा, पत्नी की चाय भी बनाकर रख देगा। पति को शोपिंग में रस नहीं है तो पत्नी मुंह चढ़ाकर पति का ब्लडप्रेशर नहीं बढाएगी और पति को सिनेमाघर जाना है और पत्नी को सिनेमा में रस नहीं है तो भी पत्नी पति को सिनेमा की टिकट लाकर देगी। पत्नी को मायके जाना है तो पति उससे झगड़ने की बजाय प्रेम से छोड़कर आएगा और यदि संभव है तो वापस लेने भी जाएगा।

ध्यान आपको भीतर से स्वस्थ कर देगा, ध्यान से घर-धंधा छूटेगा नहीं परंतु घर और धंधा भी भगवान का मंदिर बन जाएगा। वहाँ कार्य में सुवास, निष्ठा, पावनता और प्रमाणिकता बढ़ जाएगी। परंतु मोह नहीं रहेगा। सबका साथ निभाना है प्रेम से। परंतु किसोसे चिटकना नहीं है।

यह ज्ञान तभी रहेगा जब आप प्रतिपल स्पष्ट रहेंगे कि कुछ भी शाश्वत नहीं है। परंतु यह बात जानते हुए भी प्रतिपल उसका स्मरण नहीं रहता है। जानते सब हैं। सबलोग बोलते हैं कि एक दिन तो चला ही जाना है! परंतु यह मोघ ज्ञान है, निरर्थक ज्ञान है। ऐसा ज्ञान वास्तव में सहायक नहीं बन सकता। ये शाब्दिक ज्ञान है, रटा हुआ है, औपचारिक है, अथवा धोखा है।

धोखा इसलिए कह रही हूँ कि अगर जानते हो तो फिर आसक्ति क्यों? लड़ाई झगड़े क्यों? क्यों आक्षेप और प्रतिआक्षेप? क्यों प्रतिक्रियाओं का मारा? इतनी घृणा! इतनी नफरत! इतना क्लेश, क्रोध, काम, लोभ...! क्यों? क्यों? क्यों?

क्योंकि सबको मृत्यु और त्याग वैराग्य की बातें करनी हैं। कोई सचमुच त्यागना नहीं चाहता और जिससे सबकुछ सहजता से छूट गया, सबकुछ सहज त्याज्य बन गया, मेरी दृष्टि से ऐसे लोग भगवान बन गए।

कुबेर को अलकापुरी के राजा बनाने वाले शिव स्मशान में ध्यान करके महादेव बन गए। राम वन में जाकर भगवान बन गए, बुद्ध और महावीर तप और वितराग से भगवान बन गए।

सत्य को जान लेता है उसमें और भगवान में कोई फर्क नहीं रहता क्योंकि सत्य वही जान सकता है जो सत्यरूप बन जाता है। सत्य को जानने के लिए सत्यरूप बनना पड़ता है।

प्यारे साधको!

भगवान को हम सच्चिदानंद रूप कहते हैं। इसका अर्थ है सत्य को पा लेने के बाद चित्त सदा आनंद में रहता है। शोक विसर्जित हो जाता है।

किसी भगवान के चित्र को आपने कभी रोती हुई मुद्रा में पाया है! कभी नहीं पाओगे। इसका मतलब यह नहीं है कि वे रोए नहीं हैं। राम भी रोए हैं, कृष्ण भी रोए हैं, बुद्ध, महावीर, ईसू, महम्मद सब रोए हैं परंतु सत्य को जान लेने के बाद उनका रोना प्रेममय और करुणामय हो जाता है।

इतना ही नहीं परंतु सच्चिदानंद रूप बन जाने के बाद ही वे भगवान बने हैं लोगों की नजरों में। ऐसी अवस्था प्राप्त करने के लिए ध्यान एक महत्वपूर्ण मार्ग है।

अनेक ध्यान विधियों में यह संहार ध्यान विधि मनुष्य को खूब बल देती है।

बीस साल पहले एक भाई मेरे पास आए थे। वह कह रहे थे कि घर, परिवार, पैसे में मेरी बहुत आसक्ति है, मैं जानता हूँ कि इसमें कल्याण नहीं है परंतु विवश हूँ। मैं उस मोह से मुक्त होना चाहता हूँ। मैंने कहा तीन महीना निकाल लो आपके लिए। वे बोले ये तो कुछ ज्यादा लंबा हो गया! मैंने कहा हजारों जन्मों की जंजीरें तीन महीने में टूट रही है तो सौदा सस्ता है! आदमी प्रमाणिक और जिज्ञासु था।

मैंने उसे यह ध्यान विधि दे दी और कहा कि आपको रोज एक घंटा बैठना है इस विधि में। और कल्पना चित्र खींचना है कि पूरी प्रकृति रौद्र रूप धारण करके तांडव कर रही है और समग्र विश्व के साथ साथ तेरा जो कुछ भी है उसका सर्वनाश हो रहा है। वह आदमी एक महीने के बाद मेरे पास आया और बोला – मैया, अब तो मेरा मोह छूट गया है। ध्यान से मैंने बहुत कुछ पाया। मैंने कहा – कुछ जल्दी हो रही है। अब दो महीने के बाद ही मुझे मिलने के लिए आना।

दो महीने के बाद वह आया। गदगदित होकर मेरे सामने देखकर वंदन किया। मैंने पूछा अब क्या खयाल है ? उसने कहा – मैया, अब कुछ बोलने को रहा ही नहीं। अब सबकुछ नष्ट हो गया। मैं ही नहीं रहा, अब तो मोह रखने वाला और मोह से मुक्त होने वाला दोनों गए।

मैंने देखा कि एक नया मनुष्य मेरे सामने बैठा है। फिर मैंने आदेश दिया कि जा अब घर–धंधा संभाल। उसकी मानसिकता पूर्ण रूप से सन्यासी की हो गई थी फिर भी वह वापस लौटने से नहीं डरा, क्योंकि मुक्त तो जहाँ भी जाएगा वहाँ मुक्त ही रहेगा। और लोभी और कामी जहाँ भी रहेगा वहाँ लोभ और काम को संतुष्ट कर लेगा।

प्रिय साधको !

अपनी नजरों के सामने मन में दृढ़ भाव करके चित्र खींच लो शिव के रौद्र तांडव का और भाव करो कि प्रकृति के रौद्र तांडव में महाविनाश हो रहा है। हाँ, उस संहार में केवल पडौसी का घर मत जलाना, अपना भी जला देना। सबकुछ नष्ट होने दो। अगर मन में तकलीफ हो रही है; स्वजनों को सम्पत्ति को और पदाधिकार को नष्ट होता हुआ देखकर तो होने दो। उस तकलीफ को भी देखो। तकलीफ क्यों हो रही है यह भी देखो। भीतर से सत्य जगने लगेगा।

भीतर से उत्तर आ जाने के बाद तकलीफ होना बंद हो जाएगा। संहार दृश्य का दृष्टा जाग जाएगा। भीतर सत्यबोध जाग जाएगा कि महासंहार हो या न हो परंतु हम पैदा हुए तब से मृत्यु की प्रक्रिया शुरु हो चुकी है। मेरा और मेरे पास जो कुछ भी है उसका नाश तो निश्चित है तो नाशवंत की चिंता में क्यों बरबाद करें अपने वर्तमान को ! नाशवंत की चिंता करते रहने का अर्थ है विनाश को जल्दी निमंत्रण देना।

सबकुछ नाशवंत है इस बात का बोध होते ही चिन्ता का नाश हो जाएगा। ध्यान में जो घटना घटनी थी वह घट गई, ध्यान के द्वारा जो चिंतन परिवर्तन होना था वह हो गया। भीतर कुछ बदल गया। अब ना आसक्ति है ना चिंता।

प्यारे साधको !

इसी क्षण में मोक्ष घटित होता है।

धरणा - ५४

जगतसंहारभाव ध्यान

प्रिय साधको !

संहार संबंधी दूसरी विधि में थोड़े फर्क के साथ संहार की भावना करनी है।

फर्क इतना है कि इसविधि में आपको ज्यादा सूक्ष्म कल्पना में उतरना पड़ेगा। सबसे पहले इस परम सत्य को याद रखो कि अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश इन पांच तत्वों के मिलने से इस जड़–चेतन विश्व का अस्तित्व है।

एक अनुकूल स्थान पर बैठ जाओ और तीव्र कल्पना करो कि इस जगत का संहार हो रहा है। विश्व में महाविनाश घट रहा है। और उसमें जगत की चीजों का विघटन होकर पांचो तत्व अपने अपने मूल रूप में मिल रहे हैं। अर्थात वायु वायु में, अग्नि महाअग्नि में, पृथ्वी पृथ्वी में, जल महासागर में और आकाश आकाश में।

प्रारंभ में यह विधि कठिन लगेगी क्योंकि आपने व्यक्ति और वस्तु को सदा एक आकार और नाम में देखा है। उन चीजों में सूक्ष्मता से देखने का प्रयास ही नहीं किया। अब अचानक इस ध्यान में उतरना शुरु करेंगे तो पहले तो तकलीफ होगी।

मानो कि आप अपने ही स्वजन को या अपने शरीर को विनाशित होता देख रहे हो तब थोड़ी देर के लिए यह धारणा छोड़ दो कि कोई आपका स्वजन या आपका शरीर है। संसार भाव से अथवा आसक्ति भाव से पर हो जाओ।

मन, बद्धि, शरीर, नाते, रिश्ते से एवं आकारों से ऊपर उठ जाओ थोड़ी देर के लिए। सीधा सत्य में प्रवेश करो। प्रारंभ में विधि कठिन लगे तो भले लगे परंतु छोड़ना मत।

ऐसा मत समझना कि मैं मेरे या मेरे स्वजन की विनाश की कल्पना क्यों करूं ? ये तो सब गलत सीखने जैसा है ! मैं जीवन की उपासना क्यों न करूं ? मरने की क्यों करूं ?

प्रिय साधको !

जीवन लक्षी ध्यानोपासना की अनेक विधियाँ हैं। आप उन विधियों में से भी गुज़र सकते हैं। परंतु उन विधियों में से गुजरकर जीवन–मुक्त या परममुक्त अवस्था में प्रवेश होने की जगह चीजें ज्यादा चिटक रही हैं और वे विधियाँ आपके लिए विफल गई हैं तब यही विधि आपकी मदद कर सकती है।

मेरे द्वारा पुनर्खोजित हुई कई ध्यान विधियों में मैंने कुछ विशेष प्रकार की विधियाँ बताई हैं। सभी विधियाँ अस्तित्व के भिन्न भिन्न पहलुओं को छूती हुई आगे बढ़ती हैं और विधि के साथ आप पूर्ण रूप से विकसित होते ही, आपके भीतर कुछ बदल जाता है।

जिन लोगों को जीवन लक्षी विधियाँ मदद नहीं कर सकती हैं उन लोगों के लिए मृत्यु विषयक या संहारक धारणाएं मदद कर देती हैं। कभी कभी मृत्यु दर्शन से भी मदद मिल जाती है। जीवन और मृत्यु भिन्न भिन्न नहीं हैं। एक ही सेतु के दो छोर हैं। अगर एक छोर से नदी पार नहीं हो सकती है तो दूसरे छोर से पार उतर जाओ। मार्ग तो दो ही हैं या तो सीधी दिशा से गुज़रो, या विपरीत दिशा से।

अगर आपका नदी के तट पर स्थूल पड़ाव होता तो आपको निकट के छोर से ही यात्रा शुरु करनी पड़ती है परंतु यहाँ एक सूक्ष्म प्रवाह की बात है। यह यात्रा एक भीतर की यात्रा है। आपको मनोयोग साधना है विधि के साथ। तीव्र धारणा के द्वारा आप दूसरे छोर से भी आरंभ कर सकते हो।

शिव से लेकर आज तक हजारों हजारों योगियों ने मृत्यु की उपासना करके कुछ रहस्यों को पा लिया है और महाशांति, में अकाम भाव में और आत्मतृप्ति में प्रवेश कर लिया है।

विधि जीवन लक्षी हो या मृत्यु लक्षी। शोक के आधार पर हो या आनंद के आधार पर परंतु उसका लक्ष्य भिन्न नहीं है। परिणाम तो महाशांति और दृष्टाभाव का विकास ही है।

तीव्र कल्पना करो कि आपकी नजरों के सामने महासंहार हो रहा है। आंखें खुली रखो। ध्यान तो बाद में लगेगा, पहले आपको पता लगने दो कि आप कितने बेध्यान हैं। विधि आरंभ करते ही आप समझ पाएंगे कि आँख जैसे छोटे से अंग पर भी आपका कोई काबू नहीं है।

प्रारंभ में आँखें चंचल होंगी, आपके संकल्प की बार बार धज्जियाँ उड़ाएंगी आपकी आँखें। केवल कल्पना में भी एक दृश्य को खड़ा करने में आप बार बार विफल हो जाएंगे।

एक ओर आँखे उसके सामने जो कुछ भी है उन दृश्यों का असत्य होने पर भी सत्य रूप में बताती रहेंगी क्योंकि वह उन क्षणों में नाशवंत दृश्य भी वर्तमान में सत्य है; दूसरी ओर मन नए नए चित्र बनाएंगे, वह आपके साथ स्पर्धा करेगा। मन की गति तो प्रकाश और वायु से भी तेज है। आपका कार्य तो बहुत छोटा है।

आपको केवल एक ही दृश्य खड़ा करना है विधि के प्रारंभ में। ये तो विधि का प्रथम हिस्सा है। दूसरे हिस्से में आपके द्वारा खड़े किये हुए दृश्य को विविध तत्वों के रूप में देखना है अर्थात पंच महाभूत के रूप में देखना है। अर्थात दृश्यों में छिपे हुए अग्नि, वायु, भूमि आदि तत्वों को भिन्न भिन्न करके देखना है। फिर भी ऐसे देखना है कि आपका उनके साथ कुछ लेना देना नहीं है।

आप अपने प्रयोगशाला में केवल एक प्रयोगकर्ता हो और कल्पना में जो दृश्य खड़ा किया है वह प्रयोग का साधनमात्र है। वैज्ञानिक प्रयोगशाला के पात्रों को रसायणों को, साधनो को प्रेम करता भी है और उससे अलिप्त भी रहता है। इसी प्रकार से आपको ध्यान प्रयोग से प्रेम करना है, दृश्यों से नहीं।

आपको केवल देखना है कल्पना चित्र में। संहार के उस कल्पना चित्र को बिगड़ने मत देना।

मन और आंखें उस दृश्य को बिगाड़ने की कोशिश करेंगे। ये पुराने या नए दृश्यों को खड़ा करेंगे। असल में आपका मन और नेत्र जानबूझ कर ऐसा नहीं कर रहे हैं। वे भी अपने स्वभाव से विवश हैं। उन उपकरणों ने सतत प्रवृत्त रहकर अपना अभ्यास दृढ़ कर लिया है। और आपने कभी अभ्यास किया ही नहीं था ध्यान का। इसलिए जब आप ध्यान में उतरना प्रारंभ करते हो तब मन और इन्द्रियाँ आपसे ज्यादा शक्तिशाली मालूम पड़ते हैं। परंतु यह सत्य नहीं है। हकीकत में आप सर्वशक्तिमान हैं। परंतु आपने उस सत्य का विस्मरण कर दिया है और उस बात को सिद्ध करने का अभ्यास छोड़ दिया है।

आपका मूल क्षेत्र संसार नहीं है अध्यात्म है। परंतु मूल क्षेत्र का अभ्यास छूट जाने की वजह से आप कमजोर पड़ गए हैं। नेत्र और मन बार बार विभिन्न दृश्यों को परदे के सामने लाते हैं। प्रथम सोपान में ही विक्षेप प्रारंभ हो गया, बीच बीच में बुद्धि भी कुछ न कुछ सोचती रहती है।

वह अपने विचारों के साथ बार बार खींचती रहती है।

मनुष्य ने आत्मचेतना के स्थान पर जिंदगी भर बुद्धि का संग और प्रयोग बहुत किया। जिससे बुद्धि के साथ बहने की आदत हो गई है। वह आदत ध्यान में बाधा डाल रही है।

एक आदमी बैठा है शांति के लिए और तीन आदमी खींचे जा रहे हैं उसे भिन्न भिन्न दिशा में। तो कैसी हालत होगी उसकी ! जरा सोचिए ! ऐसी ही हालत मनुष्य की हो जाती है ध्यान में। चेतना विधि पर स्थिर होने का प्रयास कर रही है और नेत्र, मन तथा मति उसे खींचे जा रहे हैं किसी और दिशा में।

ऐसी स्थिति में आप थोड़ी विशेष सजगता से स्थिर होने का प्रयास करो। बुद्धि के साथ मत भागना, आपको ध्यान में उतरना है और बुद्धि कहती है कि दुकान पर से ग्राहक वापस जाएंगे ! आपको ध्यान करना है और बुद्धि कहेगी किसी बड़ी टोपी के साथ ऐपाइन्टमेन्ट है। इस तरह से वह आपको घुमाती रहेगी।

प्रिय साधको !

ऐसी विचलितता जब खड़ी हो तब आपको केवल विचारों को मोड़ना है आपके कल्पना दृश्य के प्रति। उस दृश्य में ही मति को स्थिर कर देनी है। आपको दृढ निर्धार करना है कि मेरे आदेश के अनुसार ही मन, मति और नेत्र अनुसरण करेंगे।

आप कोशिश करके देखना, दृढ़ संकल्प के कारण विचार आपका अनुगमन करने लगेंगे। तो बुद्धि की ओर से आती हुई बाधा हट जाएगी। फिर बाकी रहे नेत्र और मन, उनको न कुछ आदेश करना है, ना उसका विरोध करना है, न उसके संग चलना है; वहाँ आपको दूसरा ही तरीका आजमाना है। नेत्र भले किसी भी दृश्य को देखे अथवा मन नए नए संकल्प विकल्प करता रहे या नए नए विकल्पों से नए नए दृश्यों को दिखाता रहे। जब अतीत या भविष्य के संदर्भ के दृश्य दिखने लगें तो उन दृश्यों का उपयोग कर लो ध्यान विधि में। जो भी दृश्य आंखों के सामने या मन में आकार लें उन दृश्यों का संहार देखने लगो।

दृश्यों को नष्ट होते देखो, दृश्यों को भस्मीभूत होते देखो, दृश्यों का ध्वंस होते देखो। धीरे धीरे आँख और मन भी आपकी धारणा में सहयोग करने लगेंगे। विचार स्थिर हो जाएंगे।

विधि के दूसरे हिस्से में नष्ट होते दृश्यों में से पांचो तत्व अर्थात अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश विघटित हो रहे हैं ऐसा भाव करके दृश्य को भिन्न भिन्न तत्वों में अलग होकर उसके मूल रूप में विलीन होकर देखते रहो। अर्थात पंचतत्व का जोड़ बिखर कर अपने अपने रूप में मिल रहा है।

इस सोपान के अखंड दर्शन में जब आपको सफलता मिले तब विधि के तीसरे सोपान में उतरो तीसरे हिस्से में आप भी जुड़ जाओ उस विनाश में, उस विघटन में, उस महासंहार में, तीव्र भाव करो वायु आपको कहीं फेंक रहा है, जल बहा ले जा रहा है, अग्नि जला रहा है औप धरती में धंस रहे हो और आकाश में अदृश्य हो रहे है। जगत के साथ साथ स्वयं के तत्वों का विघटन होते हुए देखो।

विधि के इस तीसरे हिस्से में संभव है कि आप घबरा जाओ, डर जाओ, कांप जाओ, चिल्लाने लगो, परंतु ऐसा जो कुछ भी हो, होने दो। साक्षी जगाए रखने का प्रयत्न करो। पंच तत्व के साथ आपके विलीनीकरण की कल्पना तीव्र करो।

तीनों हिस्सों में से गुज़रकर जब यह धारणा सिद्ध हो जाती है तब साधक को जीते जी जगत की नाशवंतता का बोध हो जाता है और उसमें निर्भयता और महाशक्ति का आविर्भाव होता है।

वह शक्ति मानवीय नहीं होगी। सीमित नहीं होगी। दैहिक बौद्धिक या मानसिक भी नहीं होगी परंतु व्याख्या के पार की होगी। जिसके लिए असाधारण शब्द थोड़ी मदद कर पाएगा। आप उस शक्ति के स्वामी हो जाएंगे। अपार निर्भयता, गहन समझ, परम सत्य और महाशांति से भर जाएगा आपका हृदय।

संहारक कल्पनाओं में से उतरी हुई यह ध्यान विधि आपमें एक अविनाशी तत्व का बोध करा जाएगी। यही है शिवावस्था।

धरणा - ५५

देहदहनभाव ध्यान

प्रिय साधको !

लोग मरने से डरते हैं क्योंकि सही जीवन को चूक गए हैं। ध्यान मृत्यु के पार ले जाता है और सही जीवन प्रदान भी करता है। संतवाणी

में सुना है कि

मरने से सब जग डरो, मेरो मन आनंद।
कब मरिहों कब भेटिहों, पूरन परमानंद।।

यह एक योगपूर्ण अत्मा में से निकले शब्द हैं, एक ध्यानी हृदय के शब्द हैं।

मेरी दृष्टि से कोई भी स्थूल रचना पूर्ण नहीं है। दृष्यमान सृष्टि कुदरत की स्थूल रचना है। उसका अपूर्ण होने में ही मजा है। जब कुछ अधूरा होगा तब तो उसमें कुछ न कुछ अच्छा फेर फार कर पाएंगे। कोई भी रचना या कार्य जब पूर्ण हो जाएंगे तो निष्क्रियता का अहसास होगा। ऐसे अहसास में आदमी का जीना बिना मतलब का हो जाएगा। बे वजूद इंसान ऊब जाएगा दुनियां से अगर जगत में से क्रियायोग खत्म हो गया तो।

शायद मौत नहीं होती तो आदमी जी जी कर भी थक जाता। अगर मृत्यु आती ही नहीं तो क्या होता ? इस चिंतन में से एक कविता स्फूरी है। मेरी उस कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ मुझे याद आ रही हैं –

मृत्यु की सौगद न मिलती
तो मनुष्य का क्या होता !
बदतर बन जाता यह जीवन
बदसूरत कायम रहता !

देह पुराना ढंग पुराने
सोच विचार पुराना मन।
परिचित सभी पुराने होते
बिन मृत्यु नहीं नवजीवन।

सृष्टि के परिवर्तन के नियम के अनुसार बच्चा जन्म लेता है, फिर बड़ा होता है, फिर जवान, फिर वृद्ध अगर कोई मरता ही नहीं तो कोई जन्मता भी नहीं। सृष्टि तो एक चक्र है। सृष्टि चक्र के चलते रहने में ही उसकी सार्थकता है।

जो चक्र चलता नहीं है या चल नहीं सकता वह निरर्थक है। कुदरत ने सृष्टि को बनाकर उसमें प्राण फूंक कर छोड़ दिया होता उसके हवाले तो दुनियां बहुत बोरिंग लगती। आदमी ऊब जाता जिंदगी से।

वह थक जाता एक ही चहरे और दृश्य को बार बार देखकर।

जहाँ नए की संभावना मिटाई जाती है, वहाँ पुराने को बहुत पछताना पड़ता है।

यह बात तुरंत समझ में नहीं आती है। परंतु इतिहास को देखेंगे तब पता चलेगा कि कुछ धर्मों से लेकर अनेक संस्कृतियाँ खत्म हो गई हैं। जिन्होंने नए की उपासना नहीं की। नूतन का स्वीकार नहीं किया। वे एक जर्जरित खंडहर बनकर रह गए।

मेरी दृष्टि से मृत्यु का स्वीकार करने में ही समझदारी है, मृत्यु नवजीवन की संभावनाओं को जन्म देती है।

मृत्यु तो है मोक्षद्वार,
साधो ! उसको जो साध सको।
जीवन को जो साध सको
तो ही मृत्यु को साध सको।

प्यारे साधको !

यहाँ जीवन और मृत्यु दोनों को साधने की बात करी है। आपको होगा कि यह कैसे संभव हो सकता है ? मैं कहती हूँ – ध्यान से।

ध्यान जीवन और मृत्यु दोनों को साधने की कला है। ध्यान में बैठने की अगर आपकी तैयारी है तो समझ लो कि जीवन को आपने अपने वश में ले लिया।

ध्यान जीवन को सुरीला, आनंदपूर्ण और विशेष जीवंत बना सकता है। ध्यान मृत्यु को भी साध लेता है। मृत्यु के आने पर भी वह मृत्यु आपको नहीं मार पाएगी अगर आप ध्यानी हैं तो। वह न पीड़ित कर पाएगी, न डरा सकेगी।

अपने जीवन में आपने अनेक अनेक स्थानों से प्रयाण किया होगा। वह एक छोटा प्रयाण था, मृत्यु एक महाप्रयाण है। जिसने महाप्रयाण

की भांति मृत्यु का इस्तेमाल करना सीख लिया, उसका बार बार जन्मना और मरना बंद हो जाता है।

परंतु ये सब बातें केवल बातों से समझ में नहीं आती हैं। भारत ने बातें तो बहुत कर लीं, सैंकड़ों साल से व्यासपीठ पर से बातें ही चल रही हैं, सत्संग के रूप में। सत्संग सुनने में तो सबको अच्छा लगता है परंतु मनुष्य को जीना तो विसंगतियों में ही है।

प्यारे साधको !

जीवन की विसंगतताएं केवल ध्यान से दूर हो सकती हैं। जिसने जाना कि केवल बातों से नहीं चलेगा उस मनुष्य के लिए मुझे ध्यान विधियाँ देनी पड़ेंगी। वह सत्य का अनुभव करे इसलिए उसे एक खास मार्ग देना पड़ेगा। एक दिशा देनी पड़ेगी, जहाँ से गुजरकर वह प्रतीति करे कि शास्त्र और संतों से सुनी हुई बातें सत्य हैं।

उन मार्गों से वह जीवन की भी उपासना करे और मृत्यु की भी। अर्थात एक पूर्ण जीवन जीना सीखे। मेरी बात सुनकर आश्चर्य मत करना। और तर्क भी मत करना कि मृत्यु की उपासना ?

प्रिय साधको !

मृत्यु जन्म से कोई भिन्न घटना नहीं है। क्योंकि जन्म के साथ ही सूक्ष्म रूप से मृत्यु का आरंभ हो जाता है। जवानी तक वह मृत्यु दिखाई नहीं देती है। परंतु भीतर तो बहुत पहले से घटित होने लगा था।

मृत्यु के साथ साथ ही जीवन चल रहा है। प्रति पल प्रति श्वास शरीर में कुछ पुराना नष्ट होता है, नया जन्म लेता है, वह पलता है, बनता है, बिगड़ता है, नष्ट होता है, शरीर से बाहर फैंका जाता है और फिर फिर कर बनता है।

विसर्जन का सबसे बड़ा प्रमाण सृजन ही है। सृजन के आधार पर विसर्जन खड़ा है। एक अर्थ में दोनों परस्पर के पूरक हैं। वे दोंनो एक सिक्के के दो पहलू जैसे हैं। फिर भी मैं कहूँगी कि अगर कुछ सृजन हुआ होता ही नहीं तो विसर्जित होने के लिए क्या रह जाता ? किसका विसर्जन होता ?

पहले सृष्टि में एक आकृति का अस्तित्व था ही नहीं। बाद में माता के गर्भ में वह जीव अस्तित्व में आया। धीरे धीरे बड़ा हुआ, फिर जन्मा, फिर बड़ा हुआ .... यही है प्रति प्रसव की प्रक्रिया।

योगीजन जरा अलग ढंग से प्रतिप्रसव की प्रक्रिया में उतरते हैं। सामान्य जन ज्यादा समय लेता है। प्रतिप्रसव की प्रक्रिया में। उन्हें कुछ ज्यादा जन्म लेने पड़ते हैं। परंतु वास्तविकता तो वही है कि जो पहले नहीं था वह एक दिन नहीं होगा।

जो आज तंदुरस्त है वह एक दिन क्षीण होगा। जो दृश्यमान है वह एक दिन अवश्य अदृश्य हो जाएगा। जो जिन्दा है वह जरूर मरेगा।

बस, इतनी समझ के साथ सम्यक जीवन और मृत्यु का स्वीकार– इसे मैं कहती हूँ पूर्ण जीवन।

एक सिक्के के दो पहलू जैसे जन्म और मृत्यु का चलन है मृत्यु लोक में। एक पहलू का सिक्का संभव ही नहीं। अगर आपके पास ऐसा सिक्का है तो वह झूंठा है।

जो मृत्यु के पार चला गया, वह जन्म के पार भी चला जाएगा। जो मृत्यु के पार नहीं जा पाया उसे बार बार जन्मना पड़ेगा। जो जन्म से पार जाना चाहता है उसे मृत्यु के पार जाना ही होगा।

मृत्यु के पार जाने के लिए भी एक बार मृत्यु से अवश्य गुजरना पड़ेगा। वह गुजरना कैसा है ? किस भाव से है ? ज्ञानपूर्ण है, निर्भयता से है, सहर्ष स्वीकार से है, अगर ऐसा है तो ही उसके पार जा पाएंगे।

आसक्तिपूर्ण और वासनापूर्ण मन से मरा हुआ आदमी तो फिर पैदा हो जाएगा क्योंकि उसने पैदा होने के कारण बनाए रखे हैं। बीज छोड़कर गया है। वापस लौटने की भूमिका और बहाने तैयार हैं।

मनुष्य जब निर्बीज समाधि में प्रवेश कर लेता है तब मृत्यु मिट जाती है। अथवा कोई खास मायना नहीं रखती। उस समाधि अवस्था तक पहुंचने के लिए अनेक ध्यान विधियाँ हैं। उन विधियों में से एक है देहदहन भाव ध्यान।

यह विधि शिव ने पार्वती को बताई है। मन को वासनामुक्त, संस्कारमुक्त, इच्छामुक्त और अहंकार मुक्त करने के लिए कुछ विधियों में से गुजरकर मृत्यु के लिए तैयारी कर लो।

अपने शरीर के प्रति और जगत के प्रति जितनी आसक्ति है उन सबको ध्यानाग्नि से भस्म कर दो। विधि कहती है कि पहले कल्पना में मर जाओ, मर सकते हो ? मैं कहती हूँ कि संकल्प ही वास्तविक शक्ति है।

एक बार तीव्र कल्पना करते करते आपने पूर्ण जाग्रति के साथ मानसिक रूप से संपूर्ण देह का दहन कर दिया तो फिर जब मृत्यु आएगी

तब लोगों के द्वारा आपके शरीर को जलाना ये एक सामाजिक औपचारिकता रह जाएगी। सही मृत्यु तो ध्यान के दौरान ही घट जाएगी।

परंतु कुछ लोगों को बहुत तकलीफ होती है, वे लोग मरने की कल्पना तक नहीं कर सकते हैं। कल्पना की मृत्यु से भी संसार के प्रति जुड़ी हुई माया ममता और प्रेम उन्हें विवश कर देते हैं।

वडोदरा की जूली नाम की एक साधिका कभी कभार ध्यान शिबिर में आती है। एक बार वह ध्यान शिबिर में आई, उस दिन यही विधि थी। उसकी सास भी साधिका है, बहुत सेवाभावी है। जूली संसार दीक्षा से दीक्षित है।

वह जब शिबिर में आई उसी दिन देहदहन ध्यान विधि बताई गई। हमारे ध्यान मंदिर में विधि में उतरने के लिए दस मिनिट का समय दिया जाता है। अगर उस दौरान आपको अपने आध्यात्मिक विकास के लिए विधि अनुकूल लगे तो घर पर कम से कम २४ मिनिट तक अभ्यास करना होता है।

विधि प्रारंभ होते ही पांच मिनिट के बाद जूली रोने लगी, वह विधि में उतर भी रही थी और रो भी रही थी। ध्यान सभा पूर्ण होने के बाद मैंने उसे पूछा कि बेटा रो क्यों रही थी ? उसने कहा कि मैंने मेरे देहदहन के लिए आपके कहने के अनुसार मानसिक रूप से चिता लगाकर खुद को जलाने की सब तैयारी कर ली थी परंतु मैं चिता पर लेटी थी तब मेरी छोटी बच्ची याद आ गई और मैं रोने लगी और विचार आने लगे कि उसे छोड़कर कैसे मरूं ?

उसका जवाब सुनने के बाद कुछ साधक हंसते थे परंतु वह घटना शुभ थी जूली के लिए। सोचो तो सही ! उसने कल्पना में यह नहीं सोचा कि मैं झूठ मूठ मर रही हूँ। उसके लिए वह मरना वास्तविक हो गया था।

कितनी तीव्रता होगी उसकी धारणा में ! उसका तदात्म्य हो गया था विधि से। वह खुद को जलाने के लिए बिलकुल तैयार थी, बच्ची याद आई तब भी विधि में से बाहर नहीं आ पाई। रो इसलिए रही थी कि मैं तो मर जाऊंगी तो बच्ची का क्या होगा ? एक माता हावी हो गई उसके मन पर। परंतु धारणा और ध्यान नहीं छोड़ा। बच्चे की याद ने उसे विचलित जरूर कर दिया। पहुंचते पहुंचते वह रह गई, परंतु सत्य के बहुत निकट पहुंच गई थी।

जरा सी बात के लिए भले वह चूक गई, परंतु मुझे आनंद तो इस बात का हुआ कि उस साधिका में काफी संभावनाएं पड़ी हैं।

प्यारे साधको !

संकल्प जब साकार बनकर सत्य तक पहुंच जाएगा तब ज्ञानोपलब्धि हो जाएगी। फिर आकार प्रकार बिखर जाएंगे, सिर्फ अनुभूति रहेगी।

जगदासक्ति और देहासक्ति से मुक्त होने के लिए ध्यान मार्ग में बहुत छोटी छोटी परंतु अद्भुत विधियाँ हैं। वे विधियाँ सीधे आपके मन के साथ काम करती हैं। आत्मबल से की हुई धारणा से वह विधियाँ संकल्प शक्ति के द्वारा मन को क्षीण कर देती हैं या स्थिर कर देती हैं। मन का स्थिर होना ही मन का अदृश्य होना है। क्योंकि मन कभी स्थिर होता ही नहीं है। परंतु जो स्थिर हो गया तो समझना कि वह विसर्जित हो गया। अब आइए विधि की और विसर्जन संबंधी कुछ विधियों में से एक है देहदहन भाव ध्यान।

तंत्र शास्त्र कहता है कि इस विधि में आप स्वयं ही अपने शरीर के मानसिक रूप से अग्नि संस्कार कर दो। वैष्णवों में एक मानसिक पूजा की विधि होती है। ठीक वैसे ही तंत्र शास्त्र में स्वयं के मानसिक अग्नि संस्कार का विधान है।

मरने के बाद तो आपके शरीर का अग्नि संस्कार तो करना ही पड़ेगा। क्योंकि जब परमात्मा विदा ले लेंगे तब मृत शरीर दुर्गंधयुक्त हाड–मांस के पुतले के सिवाय कुछ नहीं रहेगा। उसे भूमि में दफनाना, जलाना, फैंक देना जंगल में, ताकि चील कौए पेट भर लें अथवा जल में बहा देना जिससे मछलियाँ खुराक पा सकें। इसके सिवाय कोई पांचवां रास्ता तो है नहीं।

दुनियां में रोज हजारों लोग मरते हैं। उन सबके शरीर को मसाला भरकर सलामत रखने का कोई उपाय नहीं है। मनुष्य के रहने के लिए भी यह धरती दिन–ब–दिन छोटी पड़ती जा रही है। आदमी समुद्र में पेशकदमी करने लगा है। आकाश के ग्रहों को खरीदने लगा है। ऐसी स्थिति में मुर्दों को धरती पर कैसे संभालेंगे। भारत के ऋषि ने जो सोलह संस्कारों की परंपरा दी है वह पूर्ण वैज्ञानिक तथा धर्म और अध्यात्म से जुड़ी हुई एक अजोड़ परंपरा है। मृत देह को अग्निदाह देना यह भारत की खोज है।

मैं उसे एक हाइजैनिक मैथड कहूंगी। निरर्थक दुर्गंध युक्त और कीड़े पड़ने वाले हाड–मांस के निष्प्राण शरीर का जल्दी से जल्दी उस ठंग से कल्याण कर देना चाहिए कि जिसका बुरा असर स्वस्थ मनुष्य पर न पड़े। रोग न फैलें, वातावरण की शुद्धता बरकरार रहे और इसलिए मैं कहती हूँ कि अग्नि संस्कार एक पूर्ण वैज्ञानिक विधि है।

आग सभी प्रकार के जन्तुओं को भस्मीभूत कर देती है। अस्पतालों में भी ऑपरेशन के औजारों को स्टरलाईजेशन के द्वारा शुद्ध करने के

बाद ही उपयोग में लिए जाते हैं। ये अग्नि की महिमा है। आधुनिक विज्ञान जब विकसित नहीं हुआ था तब आयुर्वेद के ऋषि और प्राचीन शैल्य चिकित्सक भी औजार को आग में तपाकर शरीर की शैल्य चिकित्सा करते थे।

मैं कहूंगी कि विज्ञान का अर्थ कल्याण ऐसा नहीं परंतु जिससे कल्याण है वही सच्चा विज्ञान है। और ऐसे कल्याणकारी विज्ञान को मैं धर्म कहती हूँ।

मृत शरीर के अग्नि संस्कार वैज्ञानिक और कल्याणकारी होने के नाते ऋषियों ने उसे एक धार्मिक विधि कहा। धर्म के नाम से बताए हुए सत्यों का लोग जल्दी स्वीकार कर लेते हैं। वैसे तो धर्म के नाम से कुछ भी दे दो, लोग तुरंत स्वीकार कर लेंगे क्योंकि यह एक परंपरा और संस्कारों का असर है।

खैर ! सही मृत्यु तो वही है कि जिसको आपने अस्तित्वगत रूप से जान लिया। जो मरने के पहले मर गए। मरने के पहले मरना अर्थात नई नई इच्छाओं का पैदा होना बंद हो जाना। जो जीते जी समझ गए मृत्यु को, वह मृत्यु के डर से हो गए निर्भय। सारी वासनाएं एवं मोहासक्तियों से पार चले जाना ये जन्म मृत्यु के पार जाने के बराबर है। और ऐसी मृत्यु को मैं महामृत्यु, एक शाश्वत मृत्यु, एक सार्थक मृत्यु, एक दिव्य मृत्यु और एक सूक्ष्म मृत्यु कहूंगी। ऐसी मृत्यु को आप ध्यान के द्वारा प्राप्त कर सकते हो।

बहुत कठिन बातें ध्यान के द्वारा आसानी से पकड़ में आ सकती हैं। तो क्यों न करें ध्यान ? क्यों न जाने ध्यान को ?

कभी कभी शास्त्रों और सत्संग से भी जो मदद नहीं मिलती ऐसी मदद दस मिनिट आंख बंद करके बैठने में मिल जाती है। ध्यान में प्रत्येक प्रश्नों के उत्तर आने लगते हैं। जिन उत्तरों को आपकी बुद्धि ने सोचा नहीं था परंतु वे कोई दिव्य जगत में से आए हुए उत्तर होते हैं।

जिन्दगीभर बहुत कुछ किया, परंतु संशय नहीं गए। सत्य की झलक नहीं मिली। जब सहज सत्य प्राप्त हो सके ऐसा मौका मैं आपको दे रही हूँ अनेक अनेक विधियों के द्वारा, तो अब दूर मत भागना ध्यान से।

आदमी इसलिए दूर भागता है ध्यान से क्योंकि वह स्पष्ट कहने की हिम्मत नहीं कर सकता, वह एक मर्यादा रखता है। कभी कभी मर्यादा एक बोझ और धोखा बन जाती है। ऐसी मर्यादा असत्य को ढांकती रहती है। आप भी ऐसी मर्यादा रखते हो कभी कभी। आप साफ साफ नहीं कह सकते हो कि हमारा रस तो संसार में है, भोग में है, दुनियादारी में है।

आप जितने डूबे हैं ध्यान में; उतनी गहराई में हम डूबना नहीं चाहते हैं। हमको तो संसार में ही डुबकिया लगाते रहना है। हम तो क्षणिक आश्वासन और चेंज के लिए आए हैं ध्यान शिबिर में।

प्यारे साधको !

ऐसी मर्यादा झूंठी है, निरर्थक है, घातक है। ओढी हुई मर्यादा खतरनाक है। इसमें बहुत कुछ सहन करना पड़ता है, भीतर घुटन पैदा होती है, बहुत कुछ खोना पड़ता है। इतिहास पढ़ लो तब समझ में आ जाएगा। ऐसी मर्यादा सत्य के संग की हुई बनावट है।

आप मुझे स्पष्ट कह देंगे कि ध्यान में या विधि में रस नहीं है तो मैं बचा लूंगी मेरी ऊर्जा को। मर्यादा के मुखौटे पहने हुए लोगों के लिए मेरी ऊर्जा व्यर्थ ही चली जाए, ऐसा नहीं चाहती हूँ।

परंतु एक बात याद रहे कि संसार में डूबकर तैरने का कोई उपाय नहीं है। परंतु ध्यान में तो डूबकर ही आप तैर जाओगे।

मनुष्य दुख से भागता भी है और दु:ख को पकड़े भी रखता है। ऐसे लोगों के लिए तो फिर दु:ख ही ठीक है, संसार ही ठीक है। ऐसा मनुष्य संसार को नहीं भुगतता परंतु संसार उसे भुगतने लगता है। और उसे बोध तक नहीं होता।

ध्यान आपको संसार छोड़ना नहीं सिखाता है परंतु संसार का आनंद लेकर संसार को आनंद देकर, संसार को ज्यादा सुंदर बनाकर उन सबसे अलिप्त रहना सिखाता है।

ध्यान कहता है कि दुख से भागो भी नहीं, दु:ख को पकड़ो भी नहीं। दु:ख के दृष्टा बनो। सुख को मांगो भी नहीं, अगर मिल जाए तो उसका तिरस्कार भी मत करो और सुख चला जाए तो उसका शोक मत करो।

ये सब बातें इतनी सूक्ष्म, गहन और अनुभव गम्य हैं कि ध्यान के द्वारा ही आप इन्हें समझ पाएंगे। आपके पास भी अनुभव तो है ही परंतु केवल सांसारिक स्तर का। आध्यात्मिक स्तर पर कोई अनुभव नहीं है। जब तक आप आध्यात्मिक जगत में नहीं उतरेंगे, ध्यान में नहीं उतरेंगे तब तक संसार के सुख दुख के परिवर्तन चक्र में आप पिस पिस कर खत्म होते रहेंगे।

ध्यान एक परम मृत्यु में प्रवेश करने की कला है। कुछ लोग इतने मोहासक्त होते है कि मरना नहीं चाहते। उनका अहंकार इतना खतरनाक होता है कि वे मरेंगे तो भी अपने ढंग से मरेंगे। वे कोई ज्ञानी नहीं होते। लोग ज्ञान से मरना नहीं चाहते; वे रोग से मरते हैं, भोग से मरते हैं, क्रोध से मरते हैं, लोभ से मरते हैं, अहंकार से मरते हैं परंतु ध्यान के द्वारा प्राप्त होती महामृत्यु को नहीं चाहते।

रोम का राजा था ओगस्टिन। लोग कहते हैं कि उसके नाम से एक महीने का नाम ओगस्ट रखा गया। वह नहीं चाहता था कि कोई मौत आए और उसे मरना पड़े। उसने यूथेनेसिया अपना लिया। अपनी रानी की गोद में सर रखकर जहर लेकर मर गया।

ये एक प्रकार का अहंकार ही था, आत्महत्या ही थी, अंतिम क्षण तक भोग का भाव था। कहीं न कहीं उसके मन में भय छिपा था कि किसी और राजा ने चढ़ाई कर ली, किसीने मेरा राज्य छीन लिया, किसीने मुझे बंदी बना लिया या मार दिया, मेरी रानियाँ चली गई तो ? इससे तो अच्छा है कि मैं खुद ही मर जाऊं!

लंबे जीवन का संघर्ष उसे मंजूर नहीं था। यह मृत्यु एक इतिहास बन गई। देखने में ये एक रोमेन्टिक मौत लगती है परंतु वह कायरता थी। उसका भय, भीतर की असुरक्षितता काम कर गई। राष्ट्रीय संघर्ष, शारीरिक संघर्ष और सामाजिक संघर्ष की पीड़ाओं का सामना करने से उसने जहर लेना पसंद कर लिया।

मैं कहती हूँ कि अगर उसने आध्यात्मिक संघर्ष किया होता और कभी ध्यान में उतरा होता तो इतिहास कुछ और तरह से लिखा जा सकता था।

हाँ, किसी खास अवस्था में मर्सी किलिंग (दया मृत्यु) के लिए मैं सहमत हूँ परंतु अहंकार से मरना ये कोई मरना नहीं है। ऐसी मृत्यु का कोई मजा नहीं है। कुछ खास प्रकार के जहर मनुष्य को मूर्छा में ले जाते हैं। और अध्यात्म शास्त्र कहता है कि मूर्छित दशा में पाई हुई मृत्यु मोक्ष का द्वार नहीं बन सकती।

क्योंकि मूर्छा में मन सो गया था, मन कोई विशुद्ध होकर नहीं सोया था, दुनियाभर की इच्छा वासना आसक्तियाँ भरी थी मन में। परंतु वह शरीर और ज्यादा छटपटाए नहीं इसलिए उसे मूर्छित कर दिया गया।

मन को धोखा देकर मृत्यु में जाना यह एक मर्सी किलिंग है। मन में डर नहीं होता, शरीर में पीड़ा नहीं होती, कोई दु:ख दर्द नहीं होता, जीव और यमराजा की एंचा-तानी के क्षण का मुकाबला तो हुआ नहीं, कोई दृष्टा को तो मौका नहीं रहा! ऐसा मरना कौन नहीं चाहता! परिस्थितियाँ असह्य हो गई हैं तो मरने की इच्छा हो गई है। मन को मूर्छित करके आदमी चालाकी से मौत के आगोश में सो गया।

इसका मतलब नहीं कि मन की सारी इच्छाएं नष्ट हो गई थीं, मन शुद्ध हो गया था, ना.. ना। मन तो बेचारा मजबूर है और धोखे में मरना ये भी मजबूरी है, ये मरना भी एक लाचारी है।

सही इच्छा मृत्यु तो ध्यान ही है। ध्यान विधि के द्वारा इच्छा मृत्यु में उतरो। जब कोई पीड़ा नहीं है, शरीर में कोई रोग नहीं, सब प्रकार का सुख है, पद, धन, प्रतिष्ठा सबकुछ है, तब बैठो ध्यान में और करो इच्छा मृत्यु का भाव।

जो बुद्ध ने किया था, जो आचार्य शंकर ने किया था, जो गुरु गोरख ने किया था। मैं कहती हूँ कि यह एक महाप्रयोग है। आप कोई कम ऊर्जा लेकर नहीं आए हो इस पृथ्वी पर। आप भी अपार ऊर्जा का भंडार हो। परंतु आपने दिशा नहीं बदली है।

आपने कभी सोचा भी नहीं है अपनी अपार शक्तियों के बारे में। आपने उस ऊर्जा का अपने उर्ध्वीकरण के लिए उपयोग करना ही नहीं चाहा! अगर चाहा भी तो किसी से योग्य मार्गदर्शन न मिला।

चिला चालू मंदिरों के गुरुओं तो आपको पाप-पुण्य की दुनियां में ही रखते हैं। याद रहे कि ध्यान पाप-पुण्य से ऊपर है। ध्यान एक महापुण्य है। ध्यान एक भेद रहित अवस्था है, द्वंद्व मुक्त स्थिति है।

ध्यान आपको पाप-पुण्य की दुनियाँ से ऊपर उठाकर एक ऐसी अवस्था प्रदान करता है कि जहाँ भले बुरे की जगह नहीं बचती। फिर तो जो कुछ भी होता है वह सब भलाई पूर्ण ही होता है। ध्यान बुरे को पैदा होने की संभावना मिटा देता है।

महावीर को किसी ने पूछा कि आपके विचार इतने अच्छे क्यों है ? महावीर ने जवाब दिया कि मैं कभी कारण में नहीं पड़ता हूँ, कभी सोचता नहीं हूँ कि अच्छे विचार करू और बुरे न करूं। क्योंकि सोचना तो बुद्धि का विषय है। और मेरा अनुशासन बुद्धि के हाथ में नहीं है।

जो कुछ भी है वह यही है। जो आपको अच्छा लगता है। भीतर एक ही मार्ग बचा है, एक ही दिशा बची है और वह दिशा केवल सत्य की ओर मुड़ती है; असत्य के मार्ग विसर्जित हो गए हैं।

प्रिय साधको!

अज्ञान की मृत्यु के बिना, मन की मृत्यु के बिना, अज्ञान के अंधेरे की विदाई के बिना ऐसी अवस्था संभव नहीं होती।

यहाँ ध्यान विधियों में जो मृत्यु विधि की भावना सिखाया जा रहा है वह एक अर्थ में अज्ञान की मृत्यु का अभ्यास ही है।

आप तो शाश्वत चिरंतन और अ-क्षर हो। "आप" से मेरा अर्थ है, आपकी सूक्ष्म चेतना जो अ-शरीरी है। शरीरी मरता है, अ-शरीरी कैसे मरेगा ? तो शरीरी क्या है ?

मन, वासना, आसक्ति, इन्द्रियाँ, देह .... ये सब शरीरी है। उससे मुक्त होना है जीते जी। आप कहेंगे कि यह कैसे संभव होगा ? – मैं कहती हूँ ध्यान से। मुक्त होने का अर्थ ये है कि उसकी आसक्ति से मुक्त होना।

मृत्यु आकर आपका सबकुछ छीन ले इसके पहले आप शरीर में रहते हुए भी अशरीरी को जान लो और तद्रुप होने का प्रायास करो। अ-शरीरी में तद्रुप होने का अर्थ है, आत्मा में स्थिर हो जाओ।

सांप जैसे कैंचुली उतारता है, ऐसे ही ध्यान से बल पाकर मानसिक रूप से सारे आवरणों को धीरे से उतार दो। वैसे भी मृत्यु आकर सबकुछ छीन लेगी।

मैं बार बार कहती हूँ कि शरीर एक किराए का मकान है। ध्यान इस मकान को खाली करने की तैयारी है। दीवारों से चिपके हुई सारे फोटो और चीजों को धीरे धीरे उखाड़ दो। मन और शरीर की तिजोरी में मोह के सिवाय कुछ नहीं है। वह एक उपयोगी साधन अवश्य है परंतु सर्वस्व नहीं। उसे वैसे भी एकदिन खाली करना है। मृत्यु अचानक आकर जबरदस्ती खाली करवाए इससे पहले आप स्वयं ही तैयार हो जाओ।

ध्यान पंछी को पिंजरा छोड़कर एक दिव्य विश्व में उड़ने के लिए तैयार करता है। पिंजरा छोड़ने का अभ्यास है ध्यान।

मैंने ऐसे पंछियों को देखा है, ऐसे पालतू कुत्तों को देखे हैं, गाय को देखा है कि उन्हें उनका मालिक मुक्त कर देता है तो भी वे फिर फिर कर पुराने स्थान पर आ जाते हैं। मुक्ति मिलने पर भी वे बंधन चाहते हैं।

क्यों ? मुक्ति में उन्हें असलामती लगती है वैसा ही है, मनुष्य का। मृत्यु तो मोक्ष का द्वार है, वह मनुष्य को संसार के खूंटे से मुक्त करती है। परंतु मनुष्य को मोह हो गया है पुराने माहौल का। उसे बंधन में ही सलामती लगती है।

मैंने ऐसे अपराधियों को देखा है कि उसे जेल में ही सलामती लगती है। वे जेल से इतने अभ्यस्त हो गए होते हैं कि उन्हें जेल ही स्वर्ग लगती है। वहाँ उन्हें सुरक्षा लगती है। कैदी जेल में मार पिटाई भी सहन कर लेते हैं, अपमान भी सहन करते हैं, गालियाँ भी सुनते हैं। कभी किसीको गाली देते हैं और किसी की पिटाई भी करते हैं। और हंस-खेल भी लेते हैं। रोटी पानी मिल रहा है, क्यों निकलें जेल के बाहर ?

प्यारे साधको !

संसार में भी और क्या है ? संसार की जेल में सुख सुविधा थोड़ी ज्यादा है। आपको लगता है कि आप स्वतंत्र हैं परंतु वह आभासी है। आप संसार के गुलाम हो, जेल से भी ज्यादा पराधीन हो।

मैं कहती हूँ कि शुद्ध स्वतंत्रता आपको मात्र ध्यान से प्राप्त होगी। आपको स्वतंत्रता तब प्राप्त होगी जब आप संसार के पार चले जाओ। और संसार के पार जाने की विधि है, ध्यान।

ध्यान की अनेक विधियों में से एक विधि है, देहदहनभाव ध्यान। यह विधि आपके भीतर बैठे हुए ज्ञानी को जगा देगी। ज्ञान तो सबमें हैं परंतु वह उजागर नहीं होता। ध्यान आपके ज्ञान को उजागर करने का काम करता है। तो अब उतरो विधि में, कम से कम तीन महीने तक।

इस विधि में आपको आपसे भिन्न होकर कुछ तीव्र धारणाएं करनी हैं और मानसिक क्रियाएं करनी हैं। आपका मन क्रिया में जुड़जाने से ज्यादा विक्षेप खड़ा नहीं कर पाएगा। अगर मन सहयोग न दे तो भी आप मन की मत सुनना, आपकी चेतना को सजग रखके इतनी स्वतंत्र करो कि वह ध्यान विधि में सक्रिय रहे।

इस ध्यान को आप बैठे बैठे या सोते हुए भी कर सकते हैं। परंतु मैं कहती हूँ कि एकांत शांति, स्थिरता और समग्रता होना अनिवार्य है। ध्यान में बैठकर भाव करो कि मेरी मृत्यु हो गई। फिर शरीर में से अपनी चेतना को बाहर निकलते हुए देखो, वह चेतना ही आप हो। बंद नेत्रों से की हुई धारणा में जब शरीर और चेतना दोनों अलग अलग स्पष्ट रूप से दिखने लगें तब चैतन्य देह को आदेश दो कि अब तेरे स्थूल शरीर का अग्नि संस्कार तुझको ही करना है।

स्थूल देह को अपने कांधे पर उठाकर, आंगन में ले जाकर जलाना है तो भी ठीक है अथवा सगे संबंधिओं को बुलाकर अर्थी बनाकर स्मशान में ले जाना हो तो भी आपकी मर्जी।

चेतना शरीर को कहो कि तेरी मृत्यु की घोषणा कर समाज में, परिवार में। आपके मनोजगत में सगे संबंधियों को इकट्ठे होने दो, जिसे आप बुलाना चाहते हो, आप देखो उन्हें कि जिसकी उपस्थिति आप चाहते हो आपकी मृत्यु के वक्त।

फिर आपकी अर्थी को बांधकर सब पहुंचो स्मशान पर, परंतु आपके शरीर को आप ही अग्नि लगाएंगे, बेटा-बेटी-सगे-संबंधी कोई नहीं। आप ही आपके स्थूल देह को जलाएंगे।

ध्यान में तीव्र कल्पना करो कि शरीर को जलाने के स्थान पर लेटा दिया है। लकिड़याँ, घी इत्यादि की व्यवस्था हो गई है। अग्नि संस्कार देने की आग भी तैयार करो और अग्निपाद पर लगाओ खुद के हाथों से खुद के शरीर को आग।

तंत्र शास्त्र दाएं पैर के अंगुष्ठ स्थान को अग्निपाद कहता है। वहाँ शरीर जल्दी से अग्नि पकड़ लेता है। क्योंकि वहाँ शरीर की सूर्य नाडी के अंतिम बिन्दु से संबंध है। तंत्र विज्ञान कहता है कि वहाँ विशेष रूप से अग्नि का वास है। इसलिए मुर्दों को उसी स्थान से आग लगाई जाती है।

अपने ही हाथों से अपने शरीर के दाएं पैर के अंगूठे पर आग रखो और देखते जाओ भस्मीभूत होते हुए उस शरीर को कि जिसमें आप बरसों तक रहे हैं। धीरे धीरे त्वचा, रस, रक्त, मांस, मेद जलते जाएंगे। अपने भाव जगत में अपने उस शरीर को जलते हुए देखो। देखते देखते जब तन्मय हो जाएंगे। तब अचानक दृष्टा जाग जाएगा। तीव्र धारणा सार्थक हो जाएगी।

आपको सत्य बोध घट जाएगा कि वास्तव में आप और शरीर अलग ही हैं। ज्ञान का उदय हो जाएगा। सहज ही मुक्ति प्राप्त कर लेंगे आप, आप एक अभयवरदान प्राप्त कर लेंगे इस ध्यान के द्वारा। फिर मौत आपको न डरा पाएगी, न मार पाएगी, क्योंकि आपने मृत्यु का राज पा लिया।ध्यान के माध्यम से आपने उस सनातन सत्य को जान लिया कि परम चैतन्य और शरीर एक दिखने पर भी भिन्न भिन्न है। वही परम उपलब्धि और सत्यबोध है।

धरणा - ५६

विश्वदहनभाव ध्यान

प्रिय साधको!

अग्नि सर्वसाक्षी भी है और सर्वभक्षी भी। वह रक्षक भी है और विनाशक भी। संहार भाव के अंतरगत कुछ ध्यान विधियों में से एक महत्वपूण ध्यान विधि है विश्वदहन भाव।

अग्नि का संबंध मनुष्य के साथ बहुत पुराना है। जन्म से लेकर मृत्यु तक अग्नि उसके साथ जुड़ी है। अग्नि के बिना मनुष्य का जीवन या अस्तित्व संभव नहीं है। अग्नि तत्व की अनुभूति पृथ्वी तत्व से थोड़ी कठिन है। क्योंकि वह तत्व सूक्ष्म रूप से प्रत्येक जीव में रहा है। परंतु दृश्यमान होते हुए भी अदृष्ट है।

विश्व का कोई धर्म ऐसा नहीं है कि जिसमें अग्नि का स्वीकार न हो। यह संभव ही नहीं है। मनुष्य के अस्तित्व के साथ सीधी जुड़ी हुई चीजों का विरोध विश्व का कोई धर्म नहीं कर पाएगा।

अगर किसीने ऐसी गलती कर भी दी तो ऐसे विचार और धर्म पृथ्वी पर से बहुत जल्दी अदृश्य हो जाएंगे। प्रकृति के विरुद्ध चलने वाला धर्म, बौद्धिक चित्त के द्वारा हमेशा बहिष्कृत रहेगा।

मनुष्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य ऐसे अग्नि तत्व की भावना से संलग्न कुछ खास विधियों का उपयोग स्वयं शिव ने किया है। भैरव तंत्र में शिव पार्वती को संहार भावों से संलग्न एक ध्यान विधि बताते हुए कहते हैं कि – हे सती! कालाग्नि में सर्वजगत जल रहा है। ऐसी तीव्र भावना करने से साधक नाम और रूपों के बंधन से मुक्त हो जाता है और उसमें छिपे हुए शिवत्व का आविर्भाव हो जाता है।

विधि बड़ी सरल लगती है, सरल है भी। विधि एक महाकटु सत्य को कह रही है, परंतु साधक उस सत्य का अनुभव करे इसलिए शिव ने यह विधि दी है।

शिव कहते हैं कि जरूरी नहीं है कि इस कटु सत्य को समझने के लिए कहीं आग लग जाए और सब भस्मीभूत हो जाए तभी आप सत्य को समझो क्योंकि तब तो बहुत देर हो जाएगी। दुर्घटना के वक्त होश नहीं रहेगा। भाग दौड़ में कैसे हो पाएगा ध्यान!

घटना घटने से सत्य समझ में नहीं आता है। परंतु सत्य की समझ से घटना मानसिक रूप से ज्यादा हानिलाभ नहीं कर सकती है।

पूरी दुनियाँ जानती है कि एक समय काल सबकुछ छीन लेगा। फिर भी मृत्यु का साक्षात्कार करने से लोग कितने डरते हैं। कितने दूर भागते हैं मृत्यु से। कितने उपाय करते हैं मृत्यु को दूर रखने के लिए। परंतु सबकुछ व्यर्थ जाता है। आजतक कोई सफल नहीं गया, मृत्यु से बचने में।

हाँ, ज्ञानी, ध्यानी और भक्त मर कर भी अमर हो गए। उन्हें मृत्यु नहीं मार पाया, क्यों ? क्योंकि उन्होंने मृत्यु के महासत्य को बहुत पहले से जानकर तैयारी कर ली थी। वे मृत्यु से भागे नहीं हैं। उन्होंने मृत्यु को निमंत्रण दे रखा था कि तू जब चाहे तब आ जाना, हम तैयार हैं।

प्राणायाम करने वाले, कसरत करने वाले, बाबाओं से जड़ी बूटियाँ खरीदकर खाने वाले और भांति भांति के आसन करने वाले अथवा केवल भोग में डूबे रहने वालों को में योगी या जीवन के उपासक नहीं कहती हूँ।

वे तो डर रहे हैं मौत से, भयभीत हैं वृद्धत्व से ताकि जीवन को ज्यादा से ज्यादा भुगतने के लिए नुस्खे आजमा रहे हैं। उन्हें शरीर से

तंदुरस्त रहना है, भीतर से स्वस्थ नहीं होना है। स्वास्थ्य का अर्थ है 'स्व' में स्थित हो जाना। स्वास्थ्य की शिक्षा तो कहीं से मिलती नहीं है। शरीर से हट्टा कट्टा आदमी भी अगर भीतर से खोखला है तो उसकी शारीरिक तंदुरस्ती की कीमत दो कौडी की भी नहीं है। ऐसे लोगों को पता नहीं है कि वे मृत्यु से जितने दूर जाने का भ्रम पालते हैं उतनी ही मृत्यु उसके करीब आ रही है।

मैं उन लोगों को जीवन के उपासक कहूंगी कि जिन्होंने अंतिम सत्यों को जान लिया है। उसकी आराधना करके निर्भयता से प्रतिपल तैयार है मृत्यु के स्वागत के लिए। उसका हृदय केवल जीवन के प्रति नहीं परंतु मृत्यु के लिए भी प्रेम से भरा है। ऐसे लोग दुख, शोक और काल का विस्मरण करने के लिए न पलायन करते हैं न नए नए सुखों का नशा करते हैं।

वे लोग तो अपार जाग्रति के साथ सुख दुख के हर पल को स्वीकार करके। हर्ष शोक की क्षणों के दृष्टा बने रहते हुए भी जीवन के प्रत्येक पल का उत्सव मनाते हैं। उनके जीवन का प्रत्येक पल सृजनात्मक होता है। उनका सृजन दृश्य हो या अदृश्य परंतु इतना विराट होता है कि उसके सामने विनाश या मृत्यु छोटे पड़ जाते हैं। उन्होंने जान लिया है कि जितना जीवन का मूल्य है उतनी ही मृत्यु भी मूल्यवान है।

जीवन की महिमा मृत्यु के कारण बढ़ जाती है। उन्होंने बहुत पहले से जान लिया है कि इस जगत का आखिरी सत्य है – कालाग्नि में सबकुछ भस्मीभूत हो जाना। ऐसे आत्मप्रतिष्ठितों का वर्तमान भी अद्भुत होता है और भविष्य में घटित होने वाली घटना के लिए उसकी पूर्व तैयारी भी अद्भुत होती है।

सौराष्ट्र के जूनागढ के भक्त नरसिंह मेहता ने संकल्प कर लिया था कि मेरे जीते जी मेरा पुत्र मोक्ष में चला जाना चाहिए। लोग कहते हैं कि उसने भगवान से ऐसा वरदान मांग लिया था। मैं कहती हूँ कि दृढ और विशुद्ध भावों से किये हुए संकल्प पर वरदान बरसने लगते हैं।

पुराण कहता है कि ध्रुव एक भक्त था। परंतु मेरा अध्ययन कहता है कि वह एक परम ध्यानी भक्त था। छः महीने तक द्वादश मंत्र (ॐनमो भगवते वासुदेवाय) के पुरुश्चरण के साथ उन्होंने भक्तिभाव पूर्वक प्रभु का ध्यान किया। उसके फलस्वरूप कुछ कथाकार कहते हैं कि भगवान ने दर्शन दिए, उसे सत्ता मिली, पिता ने प्रायश्चित किया और तीस हजार साल तक सुख भोगा।

ऐसा सुनकर लोग भी भक्ति करने के लिए प्रेरित होते हैं। मैं कहती हूँ कि यह एक स्वार्थ की भाषा है। ऐसी भाषा वर्षों से बोली जा रही है। लोगों की समझ बहुत कच्ची है। गलत को लोग जल्दी पकड़ लेते हैं। वे मान लेते हैं कि भक्ति करो जिससे भगवान के दर्शन होंगे और भगवान दर्शन देकर हमें सत्ता, धन, पद और प्रतिष्ठा देंगे।

लोग स्वार्थ में जीते हैं इसलिए स्वार्थ की भाषा जल्दी समझते हैं। तब बेचारे साधु संत भी वही भाषा बोलने लगते हैं और पंडित पुरोहित भी उसी भाषा में ढालते रहते हैं पुराण के अमूल्य ज्ञान को।

ऐसी तो असंख्य कथाएं हैं जिनका अर्थ बच्चे, बूढ़े, और जवान एक ही लगा लेते हैं कि भक्ति करो तो भोग मिलेगा। सेवा करो तो मेवा मिलेगा। मेवा की लालच में सेवा हो रही है। ऐसी सेवा खतरनाक है। बहुत जल्दी दूर कर देना ऐसे सेवकों को।

लोगों ने धर्म कथा के सार को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया। भोग तो वैसे भी मिल रहे हैं, टी.वी. चालू करो, राजा महाराजा जो जीवन भर नहीं देख पाए ऐसी सुंदरियाँ साधारण आदमी एक घंटे में चेनल बदल बदल कर देख सकता है। ये आंखों का भोग है और क्या! बाजार में निकलेंगे तो बहुत कम दाम में असंख्य भोजन की चीजें उपलब्ध हैं जिव्हा के भोग के लिए। बाग बगीचे इतने बढ़ गए हैं कि अनेक पुष्प उपस्थित हैं नासिका के भोग के लिए। भोग के लिए भक्ति को बीच में लाने की जरूरत ही नहीं है।

भक्ति, ज्ञान, ध्यान आदि तो त्याग की समझ को जन्म देते हैं। वे तो भोग के निरर्थकता का ज्ञान कराएंगे। वह तो परमात्मा के सीधे सानिध्य में महाभोग का दर्शन कराएंगे। जहाँ इन्द्रियाँ और चित्त बिलकुल अदृश्य हो जाते हैं। परंतु मनुष्य के मन पर तो धर्म के नाम पर एक ही मारा चल रहा है। कि भगवान को आप एक गुना दोगे तो वह आपको हजार गुना लौटाएंगे। – तब भक्तों की भीड़ एक मास इन्वेस्टमेन्ट जैसा काम करती है। और स्वर्ग, भोग और मोक्ष की लालच में दान होता रहता है।

मैंने पुराणों पर बहुत अध्ययन किया। शिव कथा, देवीभागवत कथा, रामकथा और भागवत कथा के ज्ञानयज्ञों के माध्यम से बहुत बांटा लोगों में क्रांति बीज। पौराणिक सत्यों को उजागर करने की बहुत कोशिश की। पुराणों के माध्यम से लोगों को जगाने का बहुत प्रयास किया। परंतु जो परिणाम मिलता था वह क्षणिक था। लोग मेरी वाणी की तारीफ खूब करते थे, मेरे जाने के बाद भी चर्चा चलती थी कि हरेश्वरीदेवी जैसी कथा कोई नहीं कर सकता। वे एक निडर और क्रांतिकारी महिला संत हैं, लोग सत्य का स्वीकार करते थे, परंतु जीवन में नहीं उतारते थे।

सबकी स्थिति दुर्योधन जैसी देखी। वे सत्य को जानते थे परंतु अनुसरण नहीं कर सकते थे। असत्य को भी जानते थे परंतु छोड़ नहीं सकते थे।

हाँ, कुछ लोग मेरी वाणी से जागकर ऊपर उठ गए। परंतु ज्यादातर लोग तो मेरी तारीफ करने के बाद भी वही पुरानी गलत और लालच

पूर्ण धारणाओं में ही जीना चाहते थे। मुझे मेरी प्रशंसा सुनकर खुशी नहीं मिलती थी। मेरी खुशी थी उनके जाग जाने में। उनके रूपांतरित होने में। परंतु क्या करूं, मैं भी विवश थी। कैसे समझाऊं इस समाज को ! मेरी बात सत्य है यह जानते हुए भी लोग उसे पचा नहीं सकते थे। लोग दोनों ओर बोलते रहे। कहते हैं कि प्रवचन बहुत अच्छा करती हैं परंतु साधारण लोगों के लिए कठिन है।

कौन कहता है आपको साधारण बने रहो ? असाधारण विश्व में प्रवेश कर लो, तब मेरी वाणी आपके लिए सरल बन जाएगी।

हाँ, मेरे सत्य का स्वीकार करने वाले लोग थोड़े प्रमाणिक हैं। कम से कम स्वीकार तो करते हैं कि कठिन है। उन्हें मेरी कथा, भाषा, शैली, शास्त्र, संगीत आदि कठिन नहीं लगता है, उन्हें सत्य कठिन लग रहा है।

प्यारे साधको !

सत्य कठिन ही होता है। जो निम्न स्तर पर पड़े रहना चाहते हैं, ऐसे लोगों के लिए मैं हूँ ही नहीं। धर्म के नाम से जो लोग झूंठा और क्षणिक आश्वासन पाना चाहते हैं, कथाओं के रस में डूबकर थोड़ी देर हंसकर, रोकर जो खाली होना चाहता है, जो अपना टाइम पास करना चाहता है और फल के लालच से भगवान को भजते हैं ऐसे लोगों के लिए मैं हूँ ही नहीं।

और मैं कहाँ कहाँ पहुंचूंगी। एक जगह पर नौ–दस दिन तक रुक कर ज्ञानयज्ञ के माध्यम से धर्मक्रांति करती हूँ। तब तक तो अन्य गाँव और नगरों में धर्म के नाम पर हजार हजार गलत धारणा और स्वर्ग की लालचें पैदा कर रहे होते हैं अन्य लोग।

मेरे पहले बोलकर गए हैं, वे भी घिसी पिटी स्वार्थी बात करके गए हैं। मेरे बाद में आने वाले लोगों में भी पता नहीं कि कितने जागे हुए होंगे ! मेरी बात से थोड़ा जागे हुए लोग मेरे बाद में आने वाले लोगों की बातें सुनकर उलझन में पड़ जाते हैं। वे द्विधा में पड़ जाते हैं। उनका मन खांमखां संशय से भर जाता है कि माँ हरेश्वरीदेवीजी कुछ और कहती हैं, वह एक अलग भाषा बोलती हैं और अन्य सबकी भाषा एक है। सब तो गलत नहीं हो सकते ! उसका मन फिर से संशय से भर जाता है और फिर से जप, तप, दान, पुण्य के द्वारा स्वर्ग, भगवान का धाम, पितृ का मोक्ष, पुत्र लाभ, धन लाभ आदि के लालच में और भक्ति के बनावटी नशे में धुत्त होकर ठगे जाते हैं। धार्मिक शोषण का सिलसिला फिर से शुरु हो जाता है।

बरसों तक यह सब देखने के बाद मुझे निर्णय करना पड़ा कि अब ध्यान के लिए मुझे ज्यादा ऊर्जा देनी है। मैंने देखा कि ध्यान में बैठने वाला भीड़ की तुलना में ज्यादा सजग, समझदार, प्रमाणिक और धर्म को सही अर्थ में समझने वाला होता है।

वह मेरे पास स्वर्ग, और अक्षरधाम की खोज करने के लिए नहीं आते हैं। वे खुद के भीतर उतरने का रास्ता समझने के लिए और उसपर कैसे चला जा सकता है यह जानने के लिए आते हैं। और ऐसा एक जिज्ञासु भी मुझे एक लाख लोगों की भीड़ से ज्यादा महत्वपूर्ण लगता है।

मैं जहाँ संभावना देखती हूँ, वहाँ शक्तिपात कर देती हूँ।

उपनिषद् के ऋषि का संवाद व्यक्तिगत ही है। बहुत स्थानों पर आप देखेंगे। एक शिष्य–एक गुरु, एक श्रोता–एव वक्ता और विश्व में इस तरीके से ही सत्य जिन्दा रहा है।

हम बात कर रहे थे ध्रुव की। ध्रुव ने भक्तिभाव पूर्वक ध्यान करके ऐसा साक्षात्कार साध लिया कि वह काल से निर्भय हो गए। भागवत में एक प्यारी कथा है। जब ध्रुव का शरीर छोड़ने का समय आता है तब मृत्यु ध्रुव से विनती करती है कि मेरा स्वाकीर करो, क्योंकि प्रत्येक देहधारी के अंतकाल पर उपस्थित होना यह मेरा धर्म है। तब ध्रुव कहते हैं कि मैं विमान में बैठकर भगवान के धाम में जा रहा हूँ, परंतु बुढापे के कारण विमान की सीढ़ी थोड़ी ऊंची लग रही है तो सीढ़ी के पास जाकर मेरी प्रतीक्षा कर, मैं आ रहा हूँ। तू मुझे सहारा दे देना विमान में बैठने के लिए।

ये एक रूपकात्मक भाषा है, प्रतीकात्मक भाषा है। कथा कहती है कि ध्रुव मृत्यु के सर पर पैर रखकर उसकी सहायता से विमान में चढ़कर प्रभु के लोग में गए।

मैं कहती हूँ कि जिसने ध्यान को सिद्ध कर लिया उसे मृत्यु मार नहीं सकती। ज्ञानियों के लिए मृत्यु का आगमन एक अवसर, एक मौका, एक सहयोग बन जाता है। मृत्यु करबद्ध प्रतीक्षा करती है ऐसे ध्यानियों की और बड़े आदर के साथ अपना कार्य पूर्ण करती है। ध्यानी मृत्यु के सर पर पैर रख देता है मतलब दुनिया मौत के सामने झुक जाती है परंतु मृत्यु ध्यानी के चरणों में झुककर उसे देह के अंतिम बंधन से मुक्त होकर एक शाश्वत के महाआकाश में उड़ने के लिए अदृष्ट उपकरण बनकर, ऐसे ध्यानी के निकट आकर मृत्यु धन्य बन जाती है। क्योंकि ध्यानी ने बहुत पहले जान लिया होता है कि मेरा शरीर और जगत नाशवंत है। उनके सामने मृत्यु का रहस्य पहले से ही खुला हुआ होता है। जिस वजह से ज्ञानी काल से कभी भयभीत नहीं होते। मृत्यु ज्ञानी का आदर करती है और ज्ञानी मृत्यु का। वे मृत्यु का स्वीकार करने के लिए प्रतिपल सज्ज होते हैं। ऐसे लोग जीवन के भी साक्षी और मृत्यु के भी साक्षी होते हैं।

शरीर गिर जाने के बाद उसका अध्यात्म शरीर विमान बन जाता है। और आकाश में उड़कर वे महाचेतना में विलीन हो जाते हैं। वह वृहद् चेतना ही अ-क्षर धाम है। अ-क्षर का अर्थ है जिसका कभी नाश नहीं होता।

मैं कहती हूँ कि ये दुनिया रहे या ना रहे परंतु अस्तित्व में विराट चेतना हमेशा रहती है। जो अविनाशी है।

विश्व के मनुष्य में उस महाचेतना में विलीन होने की क्षमता विकसित हो, ऐसे भाव में से ध्यान शास्त्र का आविष्कार हुआ है।

संहार से संलग्न और मृत्यु दर्शन की ध्यान विधियाँ ही सही अर्थ में जीवन का मूल्य समझाकर जीवन को विशेष आनंदपूर्ण, ज्यादा सजग और जीवंत तथा प्रेमपूर्ण जीवन जीने की शिक्षा देती हैं।

जो मनुष्य एक चिता को भी जलती हुई नहीं देख सकता तो पूरे विश्व को कालाग्नि में भस्मीभूत होता कैसे देख पाएगा ? अगर कोई ऐसी दुर्घटना घट गई मनुष्य के जीवन में तो लोग पागल हो जाएंगे।

हमारा ध्यानशास्त्र प्रत्येक मनुष्य को इस तरह से प्रशिक्षित करना चाहता है कि हर परिस्थिति में उसका होश बना रहे। वह सुख दुख के सदमों से ज्ञान दृष्टि के बल पर पार उतर जाए। और जीवन का आनंद लेता हुआ भी आसक्तियों से मुक्त हो जाए।

कभी कभी कुछ विधियाँ अति सरल, कुछ विधियाँ अति विचित्र अथवा कुछ विधियाँ अति कठिन लगती हैं। परंतु मैं कहती हूँ कि वे विधियाँ आपके लिए आवश्यक हैं तो उनमें उतरना प्रारंभ करो। आपको आलोचक नहीं बनना है। ध्यानी बनना है। आलोचक कभी अच्छा सर्जक नहीं बन सकता। वह सबकी आलोचना में ही वक्त गंवाता रहता है। और साहित्य में छिपे हुए कुछ मूल्यवान को चूक जाता है। इसलिए ध्यान रहे कि आपको विधि पर कोई टिप्पणी नहीं देनी है। आपको विधि को समर्पित होना है।

प्रिय साधको !

उतरो विश्वदहन भाव में, बैठो कोई एकांत और शांत स्थान में। ताकि आपके शरीर और इन्द्रियों को कोई विक्षेप न पहुंचे। नजर के सामने आते हुए दृश्यों को कालाग्नि में जलाते रहो। अपने पराए, भला बुरा, या मित्र शत्रु के भेद में मत पड़ना। कुछ भी बचाना नहीं है। सबकुछ जलने दो।

करीब तीन महीने के बाद आप नाम और रूप के मोह से मुक्त हो जाएंगे। तीन महीने तक समग्रता से करते रहो इस विधि को। संभव है तो चलो जाओ किसी एकांत स्थान में। भीतर शिवत्व का आविर्भाव हो जाएगा।

सुंदर-असुंदर, गरीब-तवंगर, छोटे-बड़े सब नाश्वंत हैं ऐसा बोध जग जएगा। कालाग्नि के खप्पर में सबका होम हो जाएगा एक दिन। इस ज्ञान का अखंड रहना ही प्रबुद्धावस्था है।

धरणा - ५७

जलप्रलयभाव ध्यान

प्रिय साधको !

अस्तित्व जब पुनर्सर्जन करना चाहता है तब पहले विसर्जन करना पड़ता है। आग, जलप्रलय, उल्कापात, भूकंप, चक्रवात, आदि कारण उस विसर्जन के लिए निमित्त बन सकते हैं।

जब जब सृष्टि का विसर्जन हुआ तब तब हिन्दु शास्त्र के अनुसार जल प्रलय सर्वनाश के लिए निमित्त बना है। जल प्रलय से विश्वविनाश की अनेक कथाएं उपलब्ध हैं।

इतना ही नहीं परंतु देश विदेश के कई स्थानों में बाढ़ की वजह से या सामुद्रिक तूफान के कारण जल के स्थान पर स्थल और स्थल के स्थान पर जल के सबूत मिल रहे हैं।

कुछ गाँव, कुछ लोग, कुछ स्थान, कुछ प्रजातियाँ हमेशा हमेशा के लिए नाम शेष हो जाते हैं। टी.वी. और मोबाईल फोन ने दुनियाँ को बहुत छोटा बना दिया है। भारत के झोंपडे में बैठा हुआ आदमी भी जपान के भूकंप के दृश्यों को देख सकता है।

जितनी सर्जन की महिमा है उतनी ही विसर्जन की। बाहर की तरह भीतर भी सर्जन के साथ कुछ विसर्जन की आवश्यकता है। अनावश्यक चीजों का भीतरी विसर्जन आध्यात्मिक सर्जन के लिए भूमिका तैयार करता है। और वह आध्यात्मिक सृजन के कारण बाहर के विसर्जन की पीड़ा से भी साधक बच सकता है। और इसलिए भारत के ऋषिओं ने कुछ विशेष ध्यान विधियाँ प्रदान की हैं।

संहार भाव के अंतरगत जल प्रलय भाव धारणा भी एक बहुत सरल धारणा है, सफल धारणा है, फिर भी कठिन है। सरल इसलिए है कि

जिसमें आपको अपनी दुनियाँ हकीकत में नहीं डुबा देनी है, केवल कल्पना करनी है कि सबकुछ डूब रहा है जल प्रलय में। और इस तरह की धारणा के आधार पर ध्यान में डूबकर आपके चित्त को भयमुक्त कर लेना है। मृत्यु से निर्भय हो जाना है।

यह विधि कठिन इसलिए लग सकती है कि करी कमाई पानी में डूब जाए ऐसी तीव्र धारणा करना मनुष्य मन को अच्छा नहीं लगता है। क्योंकि मन का आधार है असत्य। भूत भविष्य और वर्तमान में मन असत्य में ही जीना पसंद करता है।

विनाश या प्रलय, वह एक परम सत्य है,; परंतु ऐसे परम सत्य का स्वीकार वह कल्पना में भी नहीं कर सकता। न आपको सत्य के लिए तैयार होने देता है।

ज्यादातर लोग मन जीवी हैं। कुछ लोग तन जीवी हैं। लाखों में एक मनुष्य आत्मजीवी है।

मुझे समझने की कोशिश करना। आत्मा तो सबमें है, परंतु मनुष्य जीता है सिर्फ शरीर के लिए और मन के मज़े के लिए। इसलिए मैं मनजीवी और तनजीवी शब्द प्रयोग कर रही हूँ। वास्तव में जिसके आधार पर उसका अस्तित्व टिका है उसके लिए वह अजाग्रत है। मन का अस्तित्व शरीर के द्वारा सबल रहता है। शरीर मन की परिपूर्ति करता रहता है। शरीर के संग में ही मन अपनी इच्छाएं तृप्त करता रहता है।

शरीर के बिना मन अकेला पड़ जाएगा। कैसे पूरा होगा उसका भोग शरीर के अभाव में! इसलिए मनजीवी और तनजीवी मनुष्य को ध्यान अच्छ नहीं लगता। क्योंकि ध्यान की सारी विधियाँ तन मन से ऊपर उठा देती हैं। ध्यान से निर्लिप्तावस्था विकसित होती है। ध्यान है मन की मृत्यु। मन मरना नहीं चाहता इसलिए मृत्यु के संदर्भ में जितनी भी ध्यान विधियाँ हैं वे सब केवल मनोजीवी प्राणी के लिए कठिन प्रतीत होती हैं।

प्यारे साधको!

जल प्रलय भाव ध्यान में आपको जल प्रलय की धारणा करनी है। यह धारणा तीव्र रूप से करनी पड़ेगी। आप तीव्र कल्पना करो कि चारों ओर से जल उमड़ रहा है। आस्मान से बादल फट रहे हैं। नदी तालाब भरपूर बह रहे हैं। नदियाँ सागर की ओर जा रही हैं और सागर का जल शहरों की ओर। समुद्र में पर्वत सी मौजें उठ रही हैं। वह भीषण जल प्रवाह आ रहा है आपके शहर के करीब, गाँव के करीब, घर के करीब। वह पहुंच गया आपके घर तक, आप तक। आपकी नज़रों के सामने जो कुछ भी था वो गिरा कर उखाड़ कर बहा रहा है। जल प्रलय सबकुछ ले जा रहा है।

प्रलय में जो जो विभीषिकाएं, पीड़ाएं, वेदनाएं, दुख, दर्द, करुणता और असहायता घटती है उन सबकी कल्पना करो। सबकुछ देखो ध्यान में। असहाय चित्कारें और शबों का बहना भी देखो। समग्र विनाश का कल्पना चित्र में सर्जन करो।

प्यारे साधको!

आपको तो केवल धारणा करनी है। मनु ने तो ऐसा जल प्रलय नजरों के सामने देखा था। हिमालय के उत्तुंग शिखर पर बैठा हुआ मनु अपना राज्य परिवार, परिजन और प्रजा सहित सारे परिचितों को अपिरचितों को पशु पक्षियों को, वृक्षों को, महलों को, झोपड़ियों को, गरीबों को, तवंगरों को, सबको खत्म होते बड़े धैर्य के साथ देख रहा था।

मनु एक सहृदय राजा था। एक प्रेमी था। वह कोई कठोर आदमी नहीं था। परंतु फिर भी साक्षी भाव से सबकुछ देख पाया। इसका एक ही कारण था उसका ज्ञान। उसके ज्ञान ने जल प्रलय के कारण होता हुआ सर्वनाश को धैर्य, सहष्णुता एवं साक्षी भाव से देखने की क्षमता दी मनु को।

मनु एक ध्यानी पुरुष था। मनुस्मृति में मनु के नाम पर चढा दी गई कुछ ऐसी बातें है कि जिसे पढ़कर कभी कभी ऐसा लगता है कि मनु एक महाअज्ञानी पुरुष था। परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है।

इडा और श्रद्धा जैसी दो दो पत्नियों का प्रमाणिक पति, एक सच्चा राजद्वारी पुरुष और परम ज्ञानी, ध्यानी और भक्त था, मनु।

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठकर मनु देख रहा था प्रलय प्रवाह को, प्रलय काल को; ये कोई कल्पना नहीं है। प्राचीन भारत में घटी हुई सत्य घटना है। प्रलय प्रवाह मनुष्य से क्या क्या नहीं छीन लेता! वह प्रलय फिर छोटा हो या बड़ा, द्रष्ट हो या अद्रष्ट परंतु ज्ञान के अभाव में प्रत्येक प्रलय मनुष्य को तोड़ देता है।

जीवन में घटते हुए छोटे मोटे प्रलय में आप बिखर न जाओ इसीलिए मैं यह धारणा आपको समझा रही हूँ। इस ध्यान में तीव्रता से आप डूब जाओ... डूब जोओ, ऐसी धारणा में कि जल प्रलय हो रहा है और दुनियां डूब रही है।

डूबती दुनियां में मृत्यु का महातांडव देखकर भी आपको उस करुणांतिका से अलिप्त रहना है। मोह, माया, स्वार्थ, लोभ, काम, क्रोध

और अहंकार के सारे कारण इस ध्यान में विसर्जित हो जाएंगे। जगत की निरर्थकता और क्षणभंगुरता तादृश्य हो जाएगी। उस क्षण में आप कुछ दिव्य और अद्भुत पा लेंगे। और उस क्षण में ज्ञान का जन्म होगा।

आपको अचानक बोध हो जाएगा कि मनुष्य कितना लाचार और नाचीज़ है इस विराट के सामने।

तुरंत ही अंश और अंशी का भेद समझ में आ जाएगा। कुछ समय के बाद घटित होने वाले सत्य को आप ध्यान के द्वारा बहुत पहले समझ लेंगे।

सबकुछ बह जाने के बाद भी जो बचेगा वह आप होंगे। और महाचेतना की उपस्थिति होगी। वही क्षण व्यक्तिगत चेतना और महाचेतना के मिलन की क्षण है।

अगर ऐसा क्षण पा लिया आपने इस ध्यान विधि में उतरते उतरते तो आप मृत्यु पर विजय पा लेंगे। भय और स्वार्थ तिरोहित हो जाएंगे हमेश हमेशा के लिए। काम और क्रोध आपके दास बन जाएंगे। शरीर के रहते हुए भी आप अशरीरी जैसा अनुभव करेंगे।

प्यारे साधको !

अब मैं कहती हूँ कि सारे तर्कों को छोड़कर उतरो विधि में, प्रलय के तीव्र भाव के साथ और मेरे शब्दों को आपका अनुभव बनने दो।

धरणा - ५८

देहभित्तीभूतभाव ध्यान

प्रिय साधको !

परमात्मा तो सबके भीतर बैठे हैं। परंतु विश्व के उस घेरनहारे को आपने अनेक आवरणों से घेरकर रखा है।

मनुष्य ने अज्ञानवश दीवारों की महिमा इतनी बढ़ा दी कि लोग भीतर के परमात्मा का विस्मरण कर गए। फिर तो दीवारों की सेवा ही होती रही। लोग यह सोचना तो भूल ही गए कि बाहर की दीवारें और खिड़कियाँ इतनी सुंदर हैं तो भीतर बैठा हुआ मालिक कितना सुंदर होगा।

आदमी दीवार और परदों की सजावट करते करते भीतर के परमात्मा को भूल गया। और फिर भटकने लगा बाहर अपने भगवान को ढूंढने के लिए।

एक बार संत राबिया के घर एक संत आए, सुबह का वक्त था। उस संत ने राबिया को पुकारा राबिया जी ! बाहर आकर तो जरा देखो ! कुदरत के रूप को, सूरज की किरणें निकल रहीं हैं। फूल खिल रहे हैं। कितना अद्भुत नज़ारा है ! आप भीतर अंधेरे में क्या कर रहे हैं ? राबिया ने भीतर से जवाब दिया – आप बाहर के सूरज और फूलों को देख रहो हो और मैं मेरे भीतर चांद और सूरज के मालिक जो फूलों में रंग और खुश्बू भर देने वाले हैं उनका दर्शन कर रही हूँ। जहाँ हजार हजार सूरज भी फीके पड़ जाते हैं।

राबिया की बात बिलकुल सत्य थी। परंतु कितने लोग समझ पाएंगे ? लोग दीवारों को ही देखते हैं। ऊपर ऊपर की सुंदरता से प्रभावित होते हैं, भीतर तो झांकते ही नहीं।

प्यारे साधको !

शिव सूत्र में एक ध्यान विधि बताते हुए शिव पार्वती से कहते हैं कि शरीर को दीवार रूप जानकर उसे गिरा दो। और झांको खुद के भीतर ! प्रकाश का अनुभव हो जाएगा।

यह एक बहुत प्यारी और अनूठी विधि है। इसे आज की भाषा में विज्युलाइजेशन मेथड कह सकते हैं। परंतु आजकल विज्युलाईजेशन की बातें करने वाले धंधादारी लोग मनुष्य मन को ज्यादा से ज्यादा लालचों से भर रहे हैं। वह आपसे पैसे का विज्युलाईजेशन करने को कहते हैं, पद और प्रतिष्ठा के लिए विज्युलाईजेशन करने के लिए कहते हैं। ऐसा विज्युलाईजेशन मन को और भगाता है। और शरीर को दौड़ाता है चीजों के पीछे। परंतु यहाँ जो विज्युलाईजेशन की बात हो रही है, वह एक स्पिरिच्युल मेथड है, वह मन के पार जाने के लिए है।

आध्यात्मिक मार्ग में माइन्ड पावर बढ़ाना नहीं है परंतु मन को शांत कर देना है। आत्म सत्ता में प्रवेश करना है।

यह ध्यान विधि कहती है कि शरीर एक दीवार है ऐसा मान लो। और उसके पीछे सूक्ष्म रूप से सक्रिय है ऐसे परमात्मा को देखो।

हमारे आस पास हजारों हजारों प्रकार के रंग रूप वाली जिन्दा दीवारें घूम रहीं हैं। सब दीवारें विशिष्ट और आकर्षक लगती हैं। उनमें से अपनी शरीर रूपी दीवार का मनुष्य को सविशेष आकर्षण और महत्व है।

परंतु इस देह रूपी दीवार ने ज्ञान रूपी सूर्य को ढांक रखा है। मनुष्य ऊपर ऊपर से जी रहा है। ऐसे मनुष्य में बोध जगाने के लिए करुणावान ध्यानी पुरुषों ने कुछ विध्वंसात्मक धारणा युक्त ध्यान विधियाँ दे दीं। कभी कभी कंस्ट्रक्शन के लिए डिस्ट्रकशन अनिवार्य हो जाता है। ध्यान मनुष्य के भीतर नवसर्जन करता है। वह बिलकुल नूतन मनुष्य का निर्माण करता है। ध्यान में उतरते उतरते साधक बदल जाता है। जैसे बारिश की बौछार से वातावरण में भीगेपन का अहसास होता है और जमीं में से मीठी सैंधी खुश्बु आने लगती है वैसे ही जब मनुष्य के भीतर ध्यान की बदरी बंध जाती है तब उसके भीतर और बाहर आनंद की बौछार और खुश्बू फैलने लगती है।

कुछ ध्यान विधियाँ ऐसी हैं कि विध्वंसात्मक धारणाओं के द्वारा मनुष्य के मोह, वासना आसक्ति और आकर्षण को शांत कर देती हैं। अनावश्यक चीजें दूर हों तब तो कुछ सुन्दर रचना के लिए जगह होती है।

संहार भाव की सारी विधियाँ निरर्थक भावों को दूर करके मनुष्य में विरति के भाव को जगाकर उसे ध्यान में ले जाती है। जीवन के कड़वे से कड़वे सत्यानुभव मनुष्य में जो परिवर्तन नहीं ला सकता ऐसा परिवर्तन कुछ ध्यान विधियाँ सहजता से ला सकती हैं।

मेरे पास एक बार एक साधक ने आकर कहा कि मैं किसी भी स्त्री को देखकर विक्षिप्त हो जाता हूँ। सांसारिक तौर पर उसकी बात बिलकुल ठीक थी, विपरीत का आकर्षण स्वाभाविक है, यह एक कुदरती सम्मोहन है। मनुष्य के साथ यह प्रकृति का खिलवाड़ है और जन्म जन्म से मनुष्य यह ही कर रहा है। तो ऐसा ही होगा।

परंतु बात यहाँ खत्म नहीं होती थी। उस आदमी के पास आध्यात्मिक दृष्टि भी थी, उसको नारियों को देखकर मज़ा नहीं आता था। अगर मन को ही बहलाना होता तो मरते दम तक बहला लेता, तब तो उसे मेरे पास आने की कोई जरूरत ही नहीं थी। परंतु उसके शब्द महत्वपूर्ण थे, उसने कहा कि मैं विक्षिप्त होता हूँ अर्थात उसकी शांति में विक्षेप होता था। उसका अर्थ यह हुआ कि एक तरफ से उसकी आंतरिक यात्रा का आरंभ हो चुका था, वह बोध की दिशा में जा रहा था। दूसरी ओर तन और मन स्वभाव नहीं छोड़ रहे थे।

ऐसे द्वंद्व में से शायद प्रत्येक साधक को अल्पमहद अंश से गुजरना ही पड़ता है। सरल साधक स्वीकार कर लेता है, दंभी अपनी कमजोरियों को गुप्त रखता है। भीतर का दृष्टा जब तक जाग नहीं जाता तब तक साधक छोटे मोटे आकर्षणों से बेचारा बनता जाता है।

कुछ चिंतको एवं ध्यानियों ने कह दिया कि स्त्री में अटका है तो पहले प्राप्त कर लो स्त्री को, बाद में ध्यान में उतरो। बेबूझ लोगों को यह बात जंच गई। दही–दूध दोनों में हाथ रखना किसे अच्छा नहीं लगेगा ? परंतु मैं कहूँगी कि यह तो आप घर में भी करते थे। घर में स्त्री भी है और पूजा पाठ भी कर रहे हैं। कमरा बंद करके संसार भी चलता है और परमात्मा का ध्यान भी हो सकता है। तो फिर घर क्या गलत है ! क्या जरूरत है आश्रमों में जाने की ! आजकल के लोग आश्रम में घर जैसा महौल चाहते हैं।

मन स्त्री अथवा पुरुष चाह रहा है तो पहले तृप्त कर लो तन मन को फिर ध्यान में चित्त लगेगा। ऐसा कुछ लोग कहते हैं। मैं भी सहमत हूँ आपसे, बिलकुल लगेगा। परंतु वह तो क्षणिक हो गया। मन तो स्त्रियाँ भी बदलता रहेगा, शरीर मन का अनुश्सरण करता रहेगा, फिर ध्यान कब करेंगे ? ध्यान कम हो गया, भोग विलास बढ़ गया। इससे तो राजा महाराजा ज्यादा प्रमाणिक थे कि ऑफीशियल रानियाँ रखते थे।

मेरा स्पष्ट मत है कि ध्यान की आड़ में भोग भुगतना यह अप्रमाणिकता है। ये खुद के साथ और ध्यान के साथ बेईमानी है। ध्यान मन के पार जाने के लिए है।

एक और आप मन के पार जाने का प्रयास करते हो दूसरी और मन नए नए स्त्री पुरुष मांगता है तो वह भी देते रहते हो। यह तो ऐसा हुआ कि किसी मंजिल पर पहुंचने के लिए दस कदम चलना और बीस कदम वापस लौटना।

आप चलते जरूर रहेंगे, भ्रम को पालेंगे कि मैं ध्यान में जा रहा हूँ, परंतु यात्रा का प्रारंभ ही नहीं होगा। मन के साथ चलते रहेंगे तब तक मन कभी नहीं मरेगा।

साधु–संतों के आश्रम, ध्यानतीर्थ और मठ–मंदिर कोई मेरेज ब्यूरो या फ्रेंडशिप क्लब नहीं हैं। ऐसे स्थानों में जाकर एकमात्र परमात्मा से मैत्री साधनी होती है।

प्रिय साधको !

मेरी बात ध्यान से समझना। मैं यहाँ पाप पुण्य की बात नहीं कर रही हूँ। न धर्म अधर्म की बात कर रही हूँ, न कोई दमन की बात कर रही हूँ, न कोई ढोंग करना सिखा रही हूँ। मैं एक सीधे सीधे सत्य को सीधे शब्दों में बताने का प्रयास कर रही हूँ।

योगी भर्तृहरि या पतंजलि और सदाशिव कोई पागल नहीं थे कि जिन्होंने विरति पर जोर दिया। भर्तृहरि ने तो वैराग्य शतक में स्पष्ट कह दिया कि मनुष्य ही खत्म होता है तृष्णाएं कभी खत्म नहीं होतीं। दूसरा भी एक सनातन सत्य दे दिया अपने अनुभवों से और कहा कि राग के पार की अवस्था में ही निर्भयता है। बाकी विश्व की सर्व वस्तुओं में भय है।

पतंजलि ने भी कहा कि वैराग्य से मन की वृत्तियाँ अद्रश्य होती हैं। वैराग्य का अर्थ कंठी, माला, भगवे और मुंडन नहीं है। वैराग्य का अर्थ है इच्छा, अपेक्षा और एष्णाओं से मुक्ति।

परंतु दुर्भाग्यवश बेबूझ लोगों को गुमराह करने वाले कुछ ऐसे लोग मिल गए कि ध्यान प्रेमी लोग भटक गए।

प्यारे साधको !

भोग भुगतने से क्षणिक इच्छा तृप्ति होती है। इच्छा मुक्ति नहीं, इच्छा मुक्ति की अवस्था तो ध्यान के द्वारा ही घटित होती है।

मैं शरीर विरोधी नहीं हूँ, न मेरे पास कोई रूढ़िवादी चित्त है। परंतु इतना अवश्य कहूंगी कि ध्यान से तन और मन की शोधन क्रिया होती है। मैं आपके सामने तीसरी ही बात रख रही हूँ। मैं आपको देह दमन भी नहीं सिखाऊंगी और पहले भोगों को भुगत लो और बाद में ध्यान में उतरो ऐसी प्रेरणा भी नहीं दूंगी। मैं क्यों कहूं कि ऐसा करो और ऐसा न करो ! मुझे क्या अधिकार है न्याय करने का ? आप स्वयं को पूछो आपकी आत्मा क्या चाहती है ? हाँ, जब आप मेरे पास प्रश्न लेकर आएंगे तब मैं केवल ध्यान विधि बता दूंगी।

उसने जब कहा कि नारी को देखकर मन बहुत विचलित हो जाता है। मैं भीतर उतरना चाहता हूँ परंतु भटक जाता हूँ। तब मैं उसकी तकलीफ समझ गई। यात्रा शुरु हो गई है। परंतु ध्यान विकसित नहीं हुआ है।

फिर मैंने उसे पूछा कि आप आध्यात्मिक विकास के लिए क्या करते हो ? तब उसने कुछ पूजा पाठ और मंत्र बताए। तब मेरी समझ में आया कि यात्रा प्रारंभ हो चुकी है परंतु दिशा तय नहीं हुई है। पूजा पाठ ज्यादा मदद नहीं कर रहे थे। मैंने उसे एक नई दिशा दे दी। वह दिशा थी ध्यान की। और उसे देहभित्तीभूत ध्यान समझा दिया।

तीन महीने के बाद मेरे पास आकर कहा कि मैया ! आप तो भगवान हैं। चमत्कार हो गया। मैंने कहा – भगवान तो आपमें है जिसका आज प्रगटीकरण हुआ। परंतु वह भगवान दीवारों से ढंके हुए थे। ध्यान ने दीवारें हटा दीं।

चमड़ी की दीवार बहुत परेशान कर रही थी उस आदमी को। मैंने उसे समझाया था कि जैसे ही नारी को देखो और मन विचलित होने लगे तब एक बार फिर से देखो मेरी दी हुई विधि को याद करके। नारी को देखते ही धारणा करो कि उसका शरीर कुछ पदार्थों की दीवारों का बना हुआ है। अपनी तीव्र धारणा से मानसिक रूप से शीघ्र ही गिराने लगो उन दीवारों को। अपने संकल्प बल से लगो तोड़ने उन दीवारों को। सातों धातुओं की दीवार को गिरा दो।

वैसे तो पहली दिवार गिरते ही सारा आकर्षण नष्ट हो जाएगा। खून से लथपथ चमडीहीन नग्न काया को चूमना कौन पसंद करेगा ? किसी भूत प्रेत से भी भयानक दृश्य लगेगा। कौन देगा ऐसी काया को आलिंगन !

इस ध्यान से मन की सौन्दर्यलक्षी सारी धारणाएं तुरंत भस्मीभूत हो जाएंगी। और मन पलायन कर जाएगा।

धीरे धीरे अभ्यास बढ़ाते जाओ, फिर आपमें और अन्य में एक जीवित नर कंकाल के सिवाय कुछ भी नहीं बचेगा और फिर भी भीतर आनंद और सत्य खिल उठेंगे जो सुंदर है। वही परमात्मा है। उसे आप देख नहीं पाएंगे सिर्फ अनुभव कर पाएंगे।

जो कुछ नहीं है कहीं भी नहीं दिखाई नहीं देते हैं; नहीं है फिर भी है, और वो ही सबकुछ है – यह है परमात्मा।

उस साधक ने कहा कि तीन महीने में पंद्रह दिन तक तो विधि और मन के बीच में युद्ध चला। मन कहता है, सामने सौन्दर्य है उसे देख ले। ध्यान विधि कहती थी कि चमड़ी की दीवार है उसके पीछे देख क्या है ? पंद्रह दिन के बाद मुझे विधि में परम सत्य का दर्शन होने लगा। सौन्दर्य को तो जिन्दगी भर भुगता था, एक अर्थ में नरकंकाल को तो जिन्दगीभर आलिंगन दे लिया और अभी भी जो मन तृप्त नहीं होता है इसका अर्थ यह हुआ जो भोगा वह आनंद था ही नहीं। वह तो एक भूत था, एक वृत्ति थी मन की। जिसने मुझे आजतक परेशान कर रखा है। वह भूत अब ध्यान से ही भाग सकता है। और कोई उपाय नहीं है। मन ने पाल रखा है उस भूत को जन्म जन्म से।

ध्यान की विधि से भीतर का शुद्धिकरण हो जाएगा। तीन महीने में मुझे लगता है कि मैं बिलकुल बदल गया हूँ। आपके पास आया था वह एक कामी मन वाला जिज्ञासू था आज आपके चरणों में एक अकाम ध्यानी बैठा है। सत्य गहराई तक उतर गया है। संसार के प्रति तिरस्कार नहीं है, सौन्दर्य के प्रति कोई मोह नहीं।

प्रिय साधको !

ध्यान मनुष्य में एक विशुद्ध समझ पैदा करता है। यहाँ तो मैने एक बात बताई है। ऐसे तो अनेक उदाहरण हैं। मैं इतना ही कहती हूँ कि संसार का आनंद भले लो परंतु उसकी असारता को जानकर जब संसार को भोगेंगे, तो संसार आनंद भी देगा और बंधनरूप भी नहीं बनेगा। फिर वह आपके जीवन का बाहरी हिस्सा बन जाएगा। वह आपके अंतर तक नहीं उतर पाएगा। फिर आपकी खोज संसार नहीं रहेगी, फिर आश्रम में

जाकर या ध्यान शिबिरों में जाकर आप ध्यान के सिवाय किसी भी के लिए आकर्षित नहीं होंगे। आप कुछ और नहीं ढूंढने लगेंगे। सिर्फ परमात्मा रहेंगे।

प्रिय साधको !

अब फिर से एक बार ध्यान से समझ लो देहभित्तिभूत ध्यान विधि को।

सुंदर या असुंदर किसी भी शरीर को देखो, और आप जो परेशान होने लगो, तब तीव्र भाव करो कि शरीर एक दीवार है जिसने सत्य को ढांक रखा है। वह दीवार जन्म जन्म से बाधा बन रही है और सत्य से दूर रख रही है। तो सत्य क्या है ? इसे जानने के लिए अपने संकल्पबल से देह की जितनी भी दीवारें हैं उन्हें बारी बारी गिराकर दूर कर दो।

रास्ते पर चले जा रहे हो और सुंदर स्त्री या पुरुष को देख लिया मन उसके पीछे भागने लगा अथवा उसे पाने के लिए तड़पने लगा, तो मन को इस ध्यान विधि के द्वारा उस नर–नारी के सौन्दर्य की असलियत बता दो।

पहले संकल्प करो कि चमड़ी की दीवार गिर रही है। रक्त रंजित मानव आकार में एक भयावना पुतला दिखाई देगा आंखों के सामने, फिर रस और रक्त की दीवार को गिरा दो। तीव्र भाव करो कि शरीर में से रक्त की धाराएं बह रहीं हैं और शरीर रक्तहीन होता जा रहा है। फिर मेद और मांस की दीवारों को गिराते जाओ। जो चमड़ी की आड़ में आपको सुख देता था उसकी असलियत को भी जान लो। फिर अस्थि–पिंजर को भी देखो, अस्थियों की दीवार गिराकर भीतर की मज्जा को देखो ..... देखते रहो, अंत में क्या है ..... कुछ नहीं ! बस, यह "जो कुछ नहीं है, यही है मनुष्य देह का परम सत्य"।

देहभित्तीभूत भाव ध्यान के द्वारा कुछ नहीं का बोध जगने दो स्वयं में। और ऐसा बोध जगने के साथ ही अन्य के देह में से भी अपनेआप सारी आसक्तियाँ छूट जाएंगी।

शरीर के भीतर मनुष्य ने सुख की कल्पना की है। मान लिया है कि अन्य के शरीर में से सुख मिलता है। परंतु दीवार गिराते–गिराते–गिराते..... जो मौज थी, मस्ती थी, आनन्द था वह तो भीतर कहीं भी नहीं मिला। तो वह कहाँ गया ?

वह कहीं नहीं गया है। वह वहीं की वहीं है, रोम रोम में है, परंतु सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म को प्रेम करना यह परमात्मा को प्रेम करने तुल्य है। और केवल शरीर को चिटकना यह नर्क में जाने तुल्य है।

और परमात्मा जब दिखेंगे तब कोई एक सुंदरी में नहीं दिखेंगे, जब दिखेंगे तब तो गोरे और सांवले सबमें दर्शन होंगे। अपने भीतर भी दिखेंगे। उस परमात्मा का सिर्फ दर्शन हो सकता है उसको पकड़ने का कोई उपाय नहीं है।

शरीर में कुछ सार नहीं है यह जान लेने के बाद ही सत्य की खोज शुरु होती है। और मैं तो कहूंगी कि खोज भी नहीं करनी पड़ेगी। असत्य को जान लेने के साथ ही सत्य का उद्घाटन हो जाता है। अज्ञान का पता चलना यह ज्ञान का प्रारंभ है। अंधेरे का विदा होना ये सूर्य के आगमन की निशानी है।

प्यारे साधको !

अगर आपको आवश्यकता लगती है कि यह ध्यान आपकी मदद कर पाएगा तो अपना लो इस विधि को और हो जाओ बंधनों के पार।

धरणा - ५९

रक्तप्रवाह चैतन्यगतिभाव ध्यान

प्रिय साधको !

रक्त शरीर का एक बहुत महत्वपूण तत्व है सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूप से रक्त महिमावान है। हृदय, फैफड़े, गुर्दे, कलेजा शरीर के ये सारे आंतरिक अंग रक्त के बिना निष्प्राण खिलौने जैसे हैं। रक्त के बिना मनुष्य जीवन की कल्पना भी नहीं की जाती।

एक तंदुरस्त मनुष्य के रक्त में क्या क्या है ? ऐसा प्रश्न वैज्ञानिकों को करेंगे तो वे लेबोरेटरी के सूक्ष्मदर्शक यंत्र पर रक्त की बूंद को रखकर, उसमें कुछ रसायण डालकर, रक्त के सारे पदार्थों को भिन्न भिन्न करके कागजी ज्ञान के अनुसार बता देंगे कि एक बूंद रक्त में कितना प्लाज़मा, प्लेटलेट्स और पानी है।

पदार्थ गत सबका रक्त अकसर एक जैसा है। हाँ, किसी के रक्त में कुछ पदार्थ ज़्यादा, किसी में विशेष रूप से मिल सकता है परंतु इससे

आगे विज्ञान कुछ भी नहीं कह पाएगा।

परंतु मैं कहती हूँ कि पदार्थगत तत्व समान होने पर भी एक ज्ञानी और मूढ के रक्त में फर्क है। एक संत और शैतान के रक्त में फर्क है। एक उदार और एक लोभी के रक्त में फर्क है। एक शांत और एक क्रोधी के रक्त में फर्क है। एक कामी और एक वितरागी के रक्त में फर्क है।

ज्ञान की पराकाष्ठा में संत और शैतान के भेद मिट जाते हैं यह बात अलग है फिर भी रक्त रक्त में बहुत फर्क होता है। इस फर्क को शास्त्र कहते हैं –"संस्कार" और विज्ञान कहता है – "जीन्स"। परंतु अध्यात्म शास्त्र जितनी गहराई और सूक्ष्मता से रक्त का विश्लेषण कर सकता है उतना विज्ञान नहीं कर पाया।

रक्त संस्कार है, रक्त जीवन है, रक्त से ही विश्व का आविर्भाव है, रक्त से काम और संसार है, रक्त ही ज्ञान का आधार और प्रेम का प्रगटीकरण है। राग और द्वेष के संस्कार मनुष्य को रक्त में मिले हुए होते हैं।

मनुष्य के लिए बहुत सारी बातें ऐसी होती हैं कि वह समझ नहीं पाता है कि मुझमें ऐसा सब क्यों है ?

विश्व में बहुत सारे माता पिता ऐसे हैं कि जो चिंतित हैं और सोचते हैं कि हम तो ऐसे नहीं हैं, हमारी संतान ऐसी क्यों ? सारे प्रश्नों का उत्तर एक ही है, रक्त। विज्ञान अभी तक डीएनए टेस्ट तक ही पहुंचा है। विज्ञान इतना ही बता सकता है कि बच्चे के रक्त के पिता कौन हैं ? क्योंकि वीर्यकण रक्त का अंतिम स्वरूप है।

आयुर्वेद कहता है कि सप्तधातु से शरीर का बंधारण है। भारत का धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्य भी इस बात का स्वीकार करता है। वे धातुएं भोजन से बनती हैं।

भोजन के सूक्ष्म भाग से मन बनता है। मध्य भाग से धातु अर्थात शरीर के विविध पदार्थ रूपांतरित होते जाते हैं नए नए रूप में। भोजन से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मेद, अस्थि फिर मज्जा और अंत में शुक्र अथवा वीर्य बनता है।

नारी के बीज को शुक्राणु कहते हैं और पुरुष के बीज को वीर्यकण। परंतु सारा खेल रक्त का है।

जिसके शरीर के रक्त बनना बन्द हो जाए ऐसे मनुष्य के शरीर की अन्य सभी धातु क्षीण हो जाती हैं, सड़ जाती हैं। मनुष्य मर जाता है।

ब्लड कैंसर क्या है ? शरीर में शुद्ध रक्त का बनना बंद हो गया। रक्त कणों की संख्या जरूरत से कम हो गई। उधार पर जीवन निकल जाता है। परंतु जिंदगी नहीं चल सकती। रक्त के खत्म होते ही जीवन की सारी संभावनाएं खत्म हो जाती हैं। एक अर्थ में रक्त प्राण है।

श्वास के द्वारा ली हुई प्राण वायु देह के रक्त प्रवाही में मिलकर प्रत्येक अंग और धातुओं को पुष्ट करता रहता है। परंतु यह रक्त केवल स्थूल रक्त नहीं है। रक्त में आप माइक्रोस्कोप द्वारा जो कुछ भी देख सकते हो, उससे ज्यादा न देख पाओ ऐसे तत्व विशेष हैं। उसे आजतक विज्ञान भी नहीं पकड़ पाया। और भारत के ऋषियों ने पकड़ में नहीं आने वाली सूक्ष्म चीज़ों को संस्कार नाम दिया। प्रत्येक मनुष्य उसको लेकर ही पैदा होता है।

विज्ञान माता पिता का रक्त परिक्षण करके बच्चे के पिता कौन है ? इस बात को सिद्ध कर सकता है परंतु 'संस्कार' कहाँ से आए ? वह सिद्ध नहीं कर पाता।

भारतीय धर्म और अध्यात्म शास्त्र तो कहते हैं कि संस्कार जगत ही मनुष्य के मूल में जुड़ा हुआ है। नारी के गर्भाधान के लिए एक पुरुष निमित्त बनता है जिसे समाज व्यवस्था पिता कहती है। क्योंकि हमारी परम्परा के अनुसार आर्थिक रूप से पुरुष ही संतान को पालता आया है। परंतु प्रत्येक व्यक्ति कुछ विशेष लाक्षणिकता एवं स्वभाव लेकर पैदा होता है। वह इकहत्तर पीढ़ियों में से कहीं से भी आ सकते हैं। और वही है रक्त के संस्कार।

बच्चे को शरीर तो एक पुरुष और स्त्री ने मिलकर दिया परंतु मातृ पक्ष या पितृपक्ष के अनेक पीढ़ियों में से संस्कार का प्रवाह कहां से उतर आया है उसका पता नहीं लग सकता।

पांचसो साल पहले के या हजार साल पहले के किसी पूर्वज के रक्त के संस्कार बहते बहते उतर सकते हैं बच्चे में कैरिअर के द्वारा। बीच की सारी पीढ़ियाँ और माँ–बाप कैरिअर बन जाते हैं और उन्हें पता भी नहीं।

मेडीकल सायन्स का केरीअर शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। आधुनिक विज्ञान कहता है कि केरिअर वह है जो रोग के कीटाणुओं का वहन कर रहा है परंतु वह रोग से पीड़ित नहीं है। वह दूसरे को रोग दे सकता है, फैला सकता है परंतु उसमें रोग के लक्षण नहीं दिखाई देते हैं। ये एक घातक घटना है।

ऐसे ही कुछ लोग संस्कारों के केरिअर भी होते हैं। माता–पिता अथवा केरिअर सिर्फ माध्यम हैं, वे सबकुछ नहीं हैं। और इसीलिए कुछ लक्षण माता–पिता में नहीं दिखने पर भी संतान में दिखाई देते हैं।

करुणा की बात यह है कि प्रत्येक माता–पिता मान लेते हैं कि हम सबकुछ है हमारे बच्चे के लिए। परंतु वे सबकुछ नहीं हैं आपकी संतान आपसे बिलकुल विपरीत हो सकती है। और तब आप उसका स्वीकार भले करो परंतु वह आपका स्वीकार नहीं कर पाएगी। और ऐसी परिस्थितियों में भाग्य को दोष देना भी मूढ़ता है। बच्चे पर टूट पड़ना यह भी अत्याचार है। इसमें दोषी कोई नहीं है। प्रवाह ऊपर से चला आ रहा है।

परंतु मनुष्य का एक स्वभाव है कि माता पिता में जो अच्छाईयाँ नहीं हैं ऐसी अच्छाईयाँ तेजस्वीता और क्षमता संतान में होगी तो स्वयं को यश भागी बना लेते हैं। और बच्चा विपरीत स्वभाव का है तो बच्चे के साथ विरोध के स्वर में बरतते हैं। कैसी विडम्बना पैदा कर देता है रक्त और अज्ञान!

जबतक सृष्टि है तब तक इस विडम्बना को रोकने का अन्य कोई ऊपाय नहीं है, सिवाय कि ध्यान।

रक्त के संस्कार को बदलने का कोई रास्ता है तो वह है ध्यान। किसी भी प्रवाह में अच्छी चीजें मिलाने लगो तो बुराईयाँ अपनेआप कम हो जाएंगी।

मनुष्य का संस्कार प्रवाह कौन सी पीढ़ी में से उतरा है, उसका तो हमें पता नहीं है और अतीत हाथ से निकल गया। कोई रोग हो तो इलाज भी करें। ऑपरेशन भी कराएं परंतु रक्त का ऑपरेशन कैसे करेंगे ?

आपने सुना होगा कि जिसकी किडनी फेल हो गई है ऐसे मरीजों का डायालिसिस करते हैं। शरीर के रक्त को बदलते रहते हैं सुखी संपन्न लोग। ताकि कमजोर किडनी पर ज़ोर न पड़े। और रक्त में अशुद्धियाँ मिलकर उसे खत्म भी न कर दें।

अगर किडनी अच्छी हो तो यूरिया, यूरिक ऐसिड जैसे अशुद्ध पदार्थों को किडनी आसानी से छान लेगी। परंतु गलत संस्कारों को छान लेने वाली किसी किडनी की खोज विज्ञान आजतक नहीं कर पाया।

मनुष्य पैसे से और डायालिसिस से रक्त प्रवाह बदल सकेगा परंतु हाड मांस तक उतर गए संस्कार नहीं बदल सकते। मनुष्य परेशान हो गया है इन संस्कारों की विरासत की वजह से। वह उसे चाहे बिना मिल गया है, किसी एड्स ग्रस्त माता पिता की संतान की भांति।

मनुष्य हार गया है अपने संस्कार से। कुछ लोग घर छोड़कर भाग जाते हैं, कुछ लोग किसीको भगा देते हैं। कुछ आत्महत्या कर लेते हैं। कुछ लोग हत्या कर देते हैं। कुछ जेल में जाते हैं, कुछ पागल खाने में और कुछ डिप्रेशन में हैं, जो तैयारी कर रहे हैं अस्पताल जाने की।

क्या करें इसके लिए ? मनुष्य की समझ में कुछ नहीं आता। यह रोग आदि अनादि से पीड़ा दे रहा है। आपने पुराण कथाओं में सुना होगा, पढ़ा होगा। पुलस्त ऋषि के उत्तम कुल में पैदा होने वाले रावण ने त्रस्त कर दिया था विश्व को। ऋषि विश्रवा जैसे पवित्र पुरुष का पुत्र ऐसा कैसे हो सकता है!

सबको आजतक आश्चर्य हो रहा है। इसका जवाब एक ही है, संस्कार, जीन्स। जो मातृ और पितृ पक्ष में से कहीं से भी आ सकते हैं। रावण का मातृपक्ष राक्षस कुल से संबंधित था, कहीं से उतर आई आसुरी वृत्ति।

वैसे तो रावण एक अजोड़ व्यक्तित्व था, अद्वितीय था, तपस्वी एवं शास्त्र ज्ञानी भी था परंतु ध्यानी नहीं था। ध्यान लगाता भी था तो भी कुछ पाने की वृत्ति से। वरदान प्राप्त करने की इच्छा से वो ब्रह्मा का ध्यान धरता था, ब्रह्म का नहीं।

ऐसा ध्यान लौकिक सफलताएं दिला भी दे परंतु आत्मज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। रावण ने अगर सिर्फ ध्यान के लिए ध्यान किया होता तो भीतर के काम क्रोध अहंकार आदि के युद्ध का शमन हो जाता। पूरा इतिहास बदल जाता।

परंतु एक ही बात छूट गई थी और वह अमूल्य थी। वह उसकी सारी संपत्ति से भी अधिक मूल्यवान थी और वह था ध्यान। रावण ने अगर ध्यान किया होता तो कुछ बात ही और होती। परंतु वह चूक गया। थोड़ी सी अजाग्रति ने एक महान हस्ति को अध:पतित कर दिया, क्यों ? क्योंकि रक्त के संस्कार!

रावण ने सत्य ध्यान के स्थान पर सीता का ध्यान किया। सीता तो परम सत्य थी परंतु अज्ञान के कारण रावण को कहीं सत्य नजर नहीं आया। उसने सिर्फ नारी को देखा। केन्द्र बदल गया।

और लंका में बरसों तक रहने के बाद भी सीता को पूरी दुनियां सती के रूप में पूजती रही इसका कारण था सही केन्द्र पर ध्यान। सीता के केन्द्र में राम था।

ध्यान रहे! यहाँ राम शब्द का प्रयोग मैं आध्यात्मिक अर्थ में कर रही हूँ, ब्रह्म के संदर्भ में कर रही हूँ, व्यक्ति के संदर्भ में नहीं। लंका में रहने के बावजूद भी सीता का केन्द्र ब्रह्म रहा। क्यों ? क्योंकि रक्त के संस्कार।

शास्त्र कहते हैं कि सीता अयोनिजा थी। ऋषि पुत्री थी। शास्त्र कहते हैं कि असुरों के नाश के लिए ऋषियों ने तंत्र के द्वारा उन्हें अपने रक्त

के द्वारा उत्पन्न की थी। ध्यानी थी, योगिनी थी, ब्रह्मबालिका थी क्योंकि ऋषि पुत्री थी। महाराज जनक तो केवल उसके पालक पिता थे।

पुराण में एक दृष्टांत रावण की कथा से विपरीत भी मिलता है, वह है प्रहलाद का दृष्टांत। असुर का पुत्र। हिरण्यकश्यपु धर्म विरोधी मानस का प्रतीक है। उसका मातृपक्ष भी असुर पक्ष का था। असुर का अर्थ होता है केवल इन्द्रियों में रमने वाला, केवल भोग में राचने वाला, सत्य बोध से अनभिज्ञ, ब्रह्म की अनुभूति से अछूता। दैवीगुणों से दूर।

परंतु हिरणाकश्यपु और क्याधु का पुत्र प्रहलाद परम प्रभु भक्त! क्यों ? रक्त के संस्कार। कहाँ से आए ये संस्कार ? पुराण में बड़ी प्यारी कथा मिलती है। देव दानव युद्ध के दौरान प्रहलाद की माता क्याधु इन्द्र द्वारा अपहत होकर नौ महीने तक नारद के आश्रम में रही थी।

तब वह गर्भवती थी, प्रहलाद गर्भ में था, नारद की भक्ति, सत्संग और ज्ञान के प्रकाश से पूरा आश्रम आलोकित था। वहाँ क्याधु ने नौ महीने तक भोजन लिया। संत के अन्न से क्याधु का रक्त बना, उस रक्त से प्रह्लाद के शरीर ने आकार लिया और उसका मन विकसित हुआ। बीज के गुण गौण हो गए। फिर क्या हुआ ये सब आप जानते हैं। मेरा संदर्भ यहाँ केवल रक्त के संस्कार से है।

लोग कहते हैं कि मनुष्य संस्कार को नहीं बदल सकता। ध्यान कहता है कि मनुष्य के रोम रोम रूपांतरित हो जाते हैं दिव्य धारणा और हकारात्मक माहौल से। इस विधि का गहन अभ्यास करने के बाद में यह बात कह रही हूँ।

इस विधि का आविष्कार मेरे लिए अनिवार्य था क्योंकि रक्त के संस्कारों से बहुत लोगों को दुखी होते हुए मैंने देखा है। मैंने देखा कि इन्सान बहुत परेशान है खून के संस्कार से। सब चाहते हैं अपनेआप को बदलना। परंतु बाहरी चीजें – मंदिर–मस्जिद, पूजा, पाठ, कंठी, माला उसे नहीं बदल पाते हैं।

कभी कभी तो कुछ लोगों के गले में कंठी माला और ललाट में तिलक लज्जित होता है। बेइमानी, गद्दारी, और बदमाशी उसके रोम रोम से टपकती हुई नज़र आती है। बाहर के सारे इलाज असफल हो गए। अब क्या करें ?

मैं कहती हूँ कि आइए मेरी ध्यान विधि की ओर, आपकी थोड़ी बहुत मदद तो अवश्य हो जाएगी। मैं जो धारणा बताऊं उसमें आपको कम से कम तीन महीने तक विकसित होते रहना है।

प्यारे साधको !

ध्यान चमत्कार कर देता है। परंतु वह चमत्कार मनुष्य के भीतर घटता है, वह चमत्कार आंखों को आंझ देने वाला नहीं, सिर्फ आपके मन मस्तिष्क को प्रभावित करने वाला नहीं होता। परंतु वह चमत्कार अस्तित्वगत रूप से घटता है।

कलिंग के युद्ध में खून की नदियां बहाने वाला सम्राट अशोक बुद्ध की शरण में आकर ध्यान से बदल गया। लूटपाट करने वाला एक क्रूर भील ध्यान से वाल्मीकि ऋषि बन गए। राहगीरों को मारकर, लूटकर उसकी अंगुलियों का हार बनाकर पहनने वाला विकृत और घातक प्रकृति का अंगुलिमाल ध्यान से बिलकुल बदल गया। ये सारे उदाहरण आपको ध्यान विधि में उतरने के लिए प्रेरित करेंगे।

ध्यान के लिए विधि कोई भी हो परंतु परिणाम तो एक ही घटता है, आत्मशांति और आत्मबोध।

मैंने ध्यान सूक्ति में जो विधि बताई है वह क्या कहती है ? जरा जाग्रति के साथ पढ़ो –

चित्त स्थिर करी हृदय ध्वनि पर तीव्र भाव से उतरो भीतर।
रुधिर गति चिन्मय रूप मानो, शीघ्र योगी परब्रह्म को जानो।

प्रिय साधको !

शरीर में रक्त निरंतर गतिशील है। जिसकी खबर हमें हृदय के धबकार से मिलती रहती है। शांत, स्वच्छ और स्थिर आसन पर बैठो। हृदय की “धक् धक् – धक् धक्” ध्वनि पर चित्त को स्थिर करो। और आंख मूंदकर तीव्र भाव करो कि आपके भीतर मात्र रुधिर नहीं परंतु रुधिर के रूप में परम चैतन्य गतिशील है।

उस चैतन्य की गति एक क्षण भी रुकती नहीं है। वह चैतन्य इतना करुणावान है कि आप भले जागो या सो जाओ, खड़े रहो या बैठ जाओ, चलते रहो या आराम करो परंतु वह एक क्षण भी नहीं रुकता।

वह सदंतर गतिशील रहता है और आपको बोध कराता है, गतिमय जीवन का। वह गतिशीलता कहती है कि मैं आपके कल्याण के लिए गतिशील हूँ तो आप भी परम कल्याण के लिए गतिशील रहो।

चित्त को स्थिर करो उस गति पर। कोई विचार नहीं, कोई दृश्य नहीं। जो कुछ भी विचार या दृश्य दिखें तो उसे बहा दो भीतर के उस महारक्तप्रवाह में, और एक ही भावना करो कि मेरे रक्त में केवल शुद्ध चैतन्य बह रहा है। सिर्फ परमात्मा परिभ्रमण कर रहे हैं रक्त के रूप में।

तीव्र धारणा करो कि मैं काम, क्रोधादि गुणों से मुक्त हूँ। मेरे भीतर उस चैतन्य के सिवाय और कुछ भी नहीं है। भीतर जो कुछ भी गतिशील है वह केवल वो ही है। वही मेरा असल रूप है, वही मेरा जीवन है।

वह परमात्मा ही मेरा मूल रूप और मेरे संस्कार हैं। मैं उससे भिन्न कभी नहीं था, कभी नहीं हो सकता। कुछ ही दिनों में आपको अहसास होगा कि आप बदल रहे हैं। ऐसा क्यों होगा ? क्योंकि आपकी तीव्र भावना हकारात्मक रसायणों को पैदा करने लगेगी। वह मिलने लगेंगे आपके रक्त में। नकारात्मक बातें बह जाएंगी उस परमात्मा के प्रवाह में। धीरे धीरे धुल जाएगी। आपके ध्यान के द्वारा ही आपकी मदद हो जाएगी। "परमात्मा का प्रवाह ही बह रहा है मेरे शरीर में।" ऐसी तीव्र धारणा भस्मीभूत कर देगी अनावश्यक चीजों को।

प्यारे साधको !

ये कोई मस्तिष्क का विषय नहीं है, तर्क वितर्क की बातें नहीं हैं। न मनोविज्ञान की पद्धति है न हिप्नोटिज़्म है। यह एक दिव्य संकल्प शक्ति का आध्यात्मिक परिणाम है।

तर्क वितर्क से आप सत्य को खो देंगे। मत करना तर्क वितर्क। आपको आवश्यकता लगती है इस विधि की तो सीधा उतर जाना इस विधि में। मैं कहती हूँ कि अतीत और भविष्य से वर्तमान हजारों गुना सक्षम होता है।

अतीत तो हाथ में से निकल गया। भविष्य एक मात्र योजना है, वह भी आपके हाथों में नहीं है। आपके हाथों में केवल वर्तमान है। जो बहुत शक्तिशाली है। उस वर्तमान का उपयोग करके ध्यान को आपका वर्तमान बनाएं। ध्यान को भविष्य पर छोड़ना यह मूर्खता है। बैठो विधि में उतरो ध्यान में। हजारों वर्ष पुराने संस्कार, जो आपको और अन्य को परेशान कर रहे हैं, जो अनचाहे आपको रक्त में मिल गए हैं, उस रक्त का शुद्धिकरण हो जाएगा। और शीघ्र ही ब्रह्मभाव में प्रवेश होगा। दृढ संकल्पशक्ति के कारण, तीव्र भावना के कारण मन और देह सहायता करने लगेंगे और चित्तशक्ति की प्रबलता के कारण आपके शरीर की अमृतग्रंथियाँ सक्रिय होकर रगरग में हकारात्मक रसायण छोड़ने लगेंगी – पुनर्जन्म का काम करेंगी और आप बदल जाएंगे; आपके अनावश्यक संस्कार धुल जाएंगे।

धरणा - ६०

सर्वचैतन्यभाव ध्यान

प्रिय साधको !

जो महामृत्यु में प्रवेश कर लेता है। वह महाजीवन भी प्राप्त कर लेता है। शाश्वत मृत्यु का दूसरा नाम है समाधि। एक बार साधक जब शाश्वत मृत्यु में प्रवेश कर गया फिर उसका जीवन एक सीमित जीवन नहीं परंतु महाजीवन बन जाता है।

ये महाजीवन क्या है ? महाजीवन है जीव मात्र में स्वयं को देखने की क्षमता। अन्य की चेतना में सूक्ष्म स्तर पर प्रविष्ट होने की कला। अन्य के भीतर झांक लेने की और उसको पढ़ लेने की कला। सूक्ष्म के साथ सूक्ष्म का सहज अनुसंधान।

कुछ तांत्रिक इसे परकाया प्रवेश की विद्या कहते हैं। परंतु जब तक महामृत्यु में प्रवेश नहीं हुआ तब तक परकाया प्रवेश संभव नहीं है। इसलिए तीव्र भाव पर आधारित कुछ विधियों में से मैंने आपको अनेक विधि मृत्यु के संदर्भ की बताई हैं।

पहले तो उन विधियों से गुजरकर उतरते जाओ मृत्यु में और अस्तित्वगत रूप से राज को जान लो कि मृत्यु क्या है ? ध्यानविधियों के आधार पर धारणा करके अवधान स्थिर करके मृत्यु के पार उतर जाओ। वही अनुभव है महामृत्यु में प्रवेश। कि जहाँ मृत्यु नहीं है, मात्र अस्तित्व का बोध है और वह अस्तित्व सबमें समान है।

बाहरी रूप,आकार, प्रकार, रंग भिन्न भिन्न हैं। वे आकर-प्रकार जाति और रंग वास्तविक नहीं हैं। वह केवल भिन्नता का भ्रम पैदा करते हैं। वास्तविक है कैवल्य, ब्रह्म चैतन्य। जो सबमें समान रूप से आवासित है।

जो मृत्यु के पार चला जाता है वही अपनी चेतना का इतने विस्तृत रूप से दर्शन कर सकता है।

प्रिय साधको !

आपके शरीर में जो चेतना है वह सीमित है। परंतु जो चेतना विश्वव्यापी है वह असीम है। सीमित और असीम के बीच में जब तक संबंध स्थापित नहीं होगा तब तक एक होने के बाद भी दोनों भिन्न रहेंगे। जब तक आप सीमित तक अटके रहेंगे तब तक असीम का अनुभव नहीं ले पाएंगे।

कुछ ऐसे लोगों को मैने देखा है कि वे घर से बाहर निकलते ही नहीं। उन्हें घर में ही ठीक लगता है। घर की देहरी को लांघकर, पत्थर की दीवारों से बाहर निकलकर जो कभी मैदान में नहीं आएगा। उसे कैसे पता चलेगा कि चांद, तारे, सूरज, अंबर, मस्त हवा और धबकती दुनियां क्या है ?

परंतु वे नहीं निकलते हैं, वे घबराते हैं बाहर निकलते हुए। ऐसे लोगों का घर से घनिष्ट तदात्म्य हो जाता है। वे खुद को विकसित नहीं कर सकते हैं।

मैं कहती हूँ कि पत्थर की दीवारों का घर हो या शरीर रूपी घर हो, परंतु जो मनुष्य केवल घर को ही चिटक कर बैठा है वह बहुत कुछ गंवा देता है। दोनों घरों में द्वार की व्यवस्थ होती है। उसे बंद रखना और चेतना को कुंठित कर लेना ये उसको कब्रस्तान बना देता है। अगर आप अंतर्मुखी हैं तो भी आंतरिक रूप से इतने विकसित हो लो कि वह प्रकाश बाहर झलकने लगे।

जिस साधक ने माटी के महल में रहकर भी उससे आसक्ति हटा ली और पूर्ण रूप से निज चेतना को विस्तृत बना लिया है, उसने मृत्यु को पार कर लिया समझो।

मृत्यु का अर्थ है सिमित जीवन। महामृत्यु का अर्थ है मृत्यु के पार का जीवन। अर्थात असीम जीवन।

यह सीमित जीवन क्या है ? साधक जब माटी की काया से ऊपर उठकर अपनी चैतन्य शक्ति का पूर्ण रूप से अनुभव करके जब जीवन मुक्त बन जाता है तब ऐसा साधक अन्य की चेतना के साथ भी सहजता से अनुसंधान साध सकता है।

क्योंकि चैतन्य शक्ति तो एक ही है, जो जीव प्राणीमात्र में समान रूप से काम कर रही है। फिर भी प्रत्येक मनुष्य अन्य चेतना के साथ सीधा अनुसंधान इसलिए नहीं साध सकता कि बीचमें शरीर बाधा रूप बन जाता है। यह बाधा सुंदर भी है और विघ्न भी है।

सामान्य मनुष्य के लिए शरीर का माध्यम श्रेष्ठ है। एक चेतना दूसरी चेतना के साथ शरीर के माध्यम से अर्थात नाम और रूप के आधार से परिचय साध लेती है।

और जीवन भर किसी लौकिक आधार पर ही एक दूसरे की चेतना को मिलते रहते हैं। परंतु यह एक व्यवहारिक मिलन है। एक लौकिक मिलन है। एक दुन्यवी मिलन है। यह मुलाकात एक स्थूल मुलाकात है।

हजारों में से एकाद को भी स्मरण नहीं आता होगा कि अपने शरीर के माध्यम से वह एक चेतना के परिचय में आ रहे हैं, परमात्मा के परिचय में आ रहे हैं। लाखों में से एकाध को भी ऐसा विचार आने में संशय है कि वे दूसरों को मिलते वक्त वे अपने ही अंश से मिल रहे हैं।

मनुष्य में अगर ऐसी समझ विकसित हो गई तो विश्व में आध्यात्मिक क्रांति घट जाएगी। और तीसरे विश्व युद्ध का कोई स्थान नहीं रहेगा।

परंतु आध्यात्मिक विश्व के बिना आध्यात्मिक क्रांति घटेगी कैसे ? आध्यात्मिक जीवन कहाँ से आएगा ? मैं कहती हूँ कि ध्यान, आध्यात्मिक जीवन का पुरस्करता है, ध्यान के द्वारा आपके आध्यात्म जगत का उद्घाटन होता है और उसका विकास भी।

दुनियां में जब दो शरीर, दो व्यक्ति एक दूसरे के परिचय में आते हैं तब वास्तव में एक ही मूल की दो चेतनाएं परिचय में आती हैं। परंतु संसार भाव में राचता मनुष्य हमेशा सत्य को खोता रहता है।

मनुष्य को विस्मरण हो गया है कि मैं चैतन्य हूँ। अगर मैं चैतन्य हूँ ऐसा नित्य स्मरण रहेगा तो दूसरा भी चैतन्य है ऐसा सहज बोध स्वत: ही रहेगा। परंतु ऐसा नहीं होता है। होता यह है कि दो व्यक्ति जब मिलते हैं तब दो योजनाएं मिलती हैं, दो रिश्ते मिलते हैं, दो नीतियाँ मिलती हैं, दो चहरे मिलते हैं, दो स्वार्थ मिलते हैं या दो गणित मिलते हैं। सत्य तो नैपथ्य में रह जाता है। चेतना का तो विस्मरण हो जाता है। इसे ही शास्त्रों ने माया कहा है।

जो भी दृश्यमान है, इन्द्रियों से अनुभव गम्य है, और मन की पकड़ में है – यह सबकुछ माया है। जो समझ में न आए उसे लोग माया कहते हैं। मैं कहती हूँ कि माया तो दृश्यमान, क्रियाशील और अविरत संपर्क में है। उसमें समझ में ना आने जैसा कुछ है ही नहीं। क्योंकि संसार में जो कुछ भी है वह सब माया ही है। हाँ, सूक्ष्म को समझना मुश्किल है। परमात्मा जल्दी समझ में नहीं आते। माया तो स्थूल है।

संत तुलसी ने कहा है कि

गो गोचर जंह लगि मन जाई, सो सब माया जानहुं भाई।

इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय, इन्द्रियों की शक्ति और मन जहाँ तक पहुंच सकता है वे सब माया। माया के तो आप पूरे पूरे अभ्यासू हैं। माया से तो परिचित हैं, बिलकुल मायामय हैं। माया तो समझ में आ जाती है। परंतु मायावी को समझना कठिन है।

जादूगर की माया में और ईश्वर की माया में फर्क इतना ही है कि जादू की माया में जादूगर दिखाई देता है परंतु उसकी माया समझ में नहीं आती। ईश्वर की माया में सिर्फ माया ही दिखाई देती है और मायावी अदृश्य रहता है।

उस अदृश्य को चैतन्य ईश्वर, परमात्मा, कुदरत कुछ भी कह लो। परंतु दृश्य और शब्द एवं स्वार्थ और शरीर तक की यात्रा करने वाला मनुष्य अपने ही भीतर छिपे हुए मयावी से अज्ञात रहकर उसको बाहर ढूंढता रहता है।

मन के पार जाने के लिए माया के पार जाना पड़ेगा। माया से ऊपर उठना पड़ेगा। जैसे ही साधक मन के पार के जगत में प्रवेश करता है कि तुरंत परम चैतन्य का बोध स्वत: घटित होता है। और इस बोध के जगने के साथ ही सर्व में भी चैतन्य का दर्शन होने लगता है।

ध्यान विधि कहती है कि स्वयं की समझ और जाग्रति से अगर इस अवस्था में प्रवेश हो सकता है तो अति उत्तम परंतु बहुत कम लोगों में ऐसा संभव है। क्योंकि ज्यादा से ज्यादा लोग अजाग्रति में जीते हैं। वे सत्य को समझने पर और जानने पर भी सत्य में जी नहीं सकते; तब क्या करें ?

आज के युग का महासत्य यह है कि मनुष्य असत्यों के साथ आसानी से जी सकता है। सत्य बोलने से सत्य सुनने से, सत्य में जीने से माहौल उसका तनाव बढ़ा देता है। मनुष्य का सत्य को अपने पक्ष में खड़ा रखने का हौसला खत्म हो गया है। ज्यादातर लोग मानसिक रूप से नपुंसक हो गए हैं।

ये नपुंसकता स्वार्थ के कारण है। उद्योग, राजनीति, परिवार, शिक्षा, कला या धर्म कोई क्षेत्र ऐसा नहीं बचा कि जहाँ कुछ भी नि:स्वार्थ भाव से हो रहा हो।

धर्म, शिक्षा और कला के क्षेत्र तो एक जमाने में श्रेष्ठ और पूजनीय क्षेत्र माने जाते थे परंतु आज वहाँ भी गंदी राजनीति ने प्रवेश कर लिया है। और अपने अपने स्वार्थ को पुष्ट करने के लिए हर इन्सान कहीं न कहीं किसी न किसी से दब रहा है और दबा रहा है।

यह दबाव मानसिक नपुंसकता को जन्म देता है। और स्वार्थांधता, सत्य को देशनिकाला देती है। ऐसे माहौल में एक ही उपाय बचा है और वह है ध्यान।

शायद ध्यान से मनुष्य पुन: पौरुषत्व प्राप्त करे। क्योंकि ध्यान मनुष्य को अपने मूल स्वरूप का दर्शन कराता है। उसकी शक्तियों का पुन: स्मरण कराता है।

ध्यान से मनुष्य कम से कम स्वयं को तो बचा सकता है मनोव्यंढड़ता के जगत से। ध्यान से सत्य का पुनर्स्मरण करके उसमें जीना सीखे इसी उद्देश्य से मैं ध्यान की अनेकानेक विधियां दे रही हूँ। आपके लिए हर विधि जीवन दायिनी है।

सब विधियां भिन्न भिन्न प्रकार की संजीवनी हैं, रसायण हैं, वे मनुष्यता को अवश्य बचा लेंगी।

प्यारे साधको !

ध्यान विधि से सत्य पैदा नहीं हो जाएगा, सत्य तो आपमें पड़ा ही है; वह केवल उजागर हो जाता है। आपका मूल स्वरूप ही सत्यरूप है। आपमें जन्मजात एक विशिष्ट समझ और सजगता है तो बहुत अच्छी बात है। अगर नहीं है तो ध्यानविधि आपको सजग करेगी। आपकी समझ को ढांककर बैठे हुए आवरणों को दूर करेगी।

ये कैसे होगा ? ये होगा चाह से, भाव से, संकल्प शक्ति से, और साधना की तीव्रता से। मैं कहती हूँ कि आपमें सत्य तो अवश्य है। उसकी समझ न हो यह अलग बात है। परंतु अगर समझ नहीं है तो उस समझ को प्राप्त करने की तीव्रता अनिवार्य है, ध्यान के लिए।

अपने ही घर में खोई हुई गहनों की गठरी को अगर आप बाहर ढूंढेंगे तो कुछ नहीं होगा। उसे घर में ही ढूंढना पड़ेगा। ध्यान विधि है अपने भीतर ही सत्य को ढूंढ लेने का इल्म।

ध्यान की अनेक विधियाँ तीव्र भाव पर आधारित हैं। जिन विधियों में तीव्र भाव के स्थान पर कुछ और विधान हैं तो उन्हें करने के लिए भी हृदय का भाव, ध्यान के प्रति आकर्षण और ध्यान में बैठकर तीव्र, तीव्रतम और तीव्रतर साधना तो अनिवार्य है।

ध्यान के लिए हृदय में भाव ही नहीं जगेगा तो कैसे उतर पाओगे आप ध्यान में। ध्यान प्रेम जैसा है, प्रेम में उतरने वाले स्त्री–पुरुष के बीच में गहरी भावनात्मकता नहीं है तो कैसे उतर पाएंगे ! संभोग तो बड़ी दूर की बात रही परंतु हाथ में हाथ भी लेना मुश्किल हो जाएगा। और ऐसी मुश्किल में मन, आत्मा और शरीर एक कैसे हो पाएंगे ?

अगर स्त्री पुरुष के बीच में स्नेह, भाव और स्वीकार का सेतु नहीं है और फिर भी शरीर समर्पण कर रहा है तो वह कोई सम्यक भोग नहीं हुआ। एक अर्थ में वह बलात्कार अथवा नर्क में डूबना है। वह दो आत्माओं का मिलन नहीं परंतु घर्षण है। वह तो गटर में उतरना है आनंद में नहीं। अथवा गिव एन्ड टेक का बिज़नेस होगा, प्रेम नहीं। इसे तो कचरे को बाहर फेंकने की वृत्ति कहेंगे। जिसमें कोई विशेष प्रसन्नता नहीं होती है; न कोई भावनात्मकता होती है।

ऐसी क्रिया मल–मूत्र के त्याग से ज्यादा कुछ नहीं। समझदार और निर्दंभी लोग शायद मेरी बात समझ पाएंगे। ध्यान के लिए ध्यानी को

ध्यान के प्रति एक प्रेमी की तरह आकर्षण नहीं है और प्रेमी की तरह समर्पण नहीं है, ना कोई तीव्रता है तो ध्यान भार रूप बन जाएगा।

सूफी संतों की एक बात बड़ी प्यारी है। वे लोग ईश्वर में माशुका का भाव करते हैं। हिन्दु में भी ज्यादा फर्क नहीं है। पात्र में केवल भाव का फर्क होता है। केन्द्र में तो प्रेम लक्षणा भक्ति ही है।

हिन्द में ईश्वर को पति भाव से भजते हैं। कबीर कहता है –"मैं राम की बहुरिया।" – मैं तो राम की बहु हूँ, उसको समर्पित हूँ। सौराष्ट्र के संत जीवण उसके पीछे दास शब्द की जगह नारी वाचक दासी शब्द लगाते हैं। क्योंकि वे घोषित करते हैं कि मैं भगवान की 'दासी' बन गई, भगवान मेरे नाथ हैं।

निष्कुलानंद, प्रेमानंद, दयाराम सबने प्रभु को पति भाव से भजा है। भक्त नरसिंह मेहता कहते हैं कि

भूली भूली भूली मारा घर नो धंधो भूली रे...

नर नारी की कल्पना एक माध्यम मात्र है। हिन्दू हो या सूफी संत, परंतु मूल बात यह है कि संतों ने प्रभु को प्रेमी माना है। एक प्रेमी को प्राप्त करने के लिए जैसा दूसरा प्रेमी तड़पता है, ऐसी तड़प जब आपको ध्यान के लिए जगेगी। तब आप ध्यान को उपलब्ध हो सकते हो।

ईश्वर भी अदृश्य है और ध्यान भी अदृश्य है। ध्यान शब्द में और ध्यान में बहुत फर्क है। ध्यान एक भाववाचक संज्ञा है। वह कोई वस्तु या व्यक्ति जैसा नहीं है। आंख मूंद कर बैठा हुआ व्यक्ति ध्यान में ही बैठा है ऐसा नहीं कह सकते हैं। अथवा ध्यान में नहीं है ऐसा भी नहीं कह सकते। ध्यान एक अस्तित्वगत अनुभूति है।

ध्यान है देहजगत, क्रियाजगत और बुद्धिजगत से ऊपर उठ जाना।

ध्यान के प्रति अनंत आकर्षण और समर्पण आपको समाधि तक पहुँचा सकता है। वह अवस्था प्रभु के संग में महाभोग है। भाव की प्रबलता, दृढ धारणा, तीव्र साधना और दृढ़ संकल्प ध्यान की आधार शिला है।

वैसे ही सर्वचैतन्यभाव ध्यान ज्ञान धारणाओं के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण ध्यान विधि है। परंतु मैंने उसे मृत्यु की धारणाओं के विभाग में समाविष्ट करके इस भाग की अंतिम ध्यान विधि के रूप में लिया है।

ऐसा करने का खास कारण है। महामृत्यु में प्रवेश के बिना आप कैसे कर पाएंगे परकाया प्रवेश! स्वयं के चैतन्य के अनुभव के बिना अन्य में बिराजित चैतन्य का अनुभव कैसे करेंगे ? जीते जी शरीर और मन से ऊपर उठ जाने को मैं महामृत्यु कहती हूँ।

अपनी काया से ऊपर उठे बिना और माया के पार पहुंचे बिना। परकाया प्रवेश संभव ही नहीं होगा। सर्वचैतन्य भाव तभी फलित होगा जब पहले आत्मचैतन्य की अनुभूति हो गई हो। देह भाव से ऊपर उठे बिना यह अनुभूति संभव नहीं है। और जीते जी देह भाव से पर होना, यह साधारण व्यक्ति के लिए बहुत कठिन भी है।

हाँ, ऐसा केवल ध्यान से संभव हो सकता है।

इसीलिए कुछ मृत्यु संबंधी विधियों का मार्गदर्शन करके पहले मनुष्य को देह भाव से ऊपर उठाने का प्रायास किया है। एक बार आत्मदर्शन हो जाने के बाद फिर उस चैतन्य का विश्वदर्शन करना कठिन नहीं होता।

सर्वचैतन्य भाव ध्यान की तीव्रतम अवस्था में दो संभावनाएं खुल जाती हैं। एक तो आपकी चेतना सूक्ष्मतम बनकर अन्य के सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर सकती है। और अन्य के मन की बातों को परदे पर दिखाई देती फिल्मों की तरह आप पढ़ सकते हो।

परंतु ऐसी सफलता को अंतिम सिद्धी नहीं मान लेना। इसे उद्देश्य नहीं बना लेना है। कुछ लोग यहाँ तक आकर अटक जाते हैं। फिर किसी की बातों को पढ़कर उसे चमत्कार में खपाकर धन कमाने में पड़ जाते हैं और परमात्मा को चूक जाते हैं।

यहाँ तक पहुंचने के बाद अटके हुए साधक को मैं ध्यानी नहीं परंतु मूढता से भरा हुआ चालाक आदमी कहूंगी। क्योंकि वह ध्यान का उपयोग आत्मकल्याण के लिए नहीं कर सका।

प्रिय साधको!

सावधान! मेरी बताई हुई ध्यान विधियों से गुजरकर आप छोटी छोटी सिद्धी तो सहजता से हासिल कर पाएंगे परंतु उनमें मत पड़ना। ऐसा किया तो आप अटक जाएंगे, चूक जाएंगे।

हाँ, किसीकी मदद कर दी आपने तो ये बात अलग है। यह संत का स्वभाव होता है। परंतु परोपकार वृत्ति आपको पकड़ न ले यह ध्यान रखना। कभी कभी परोपकार के कार्य कीर्ति बढ़ाते हैं। कीर्ति का आकर्षण धन से भी बड़ा है। लोग धन का दान करके कीर्ति कमाते हैं।

मंदिरों में और धर्मशालाओं में अपने नाम की तख्ती देखकर मन फूलता है। अहंकार पुष्ट होता है। सावधान रहना! छोटी मोटी सहज प्राप्य सिद्धियों से स्वाभाविक रूप से परोपकार हो जाएगा। परंतु उसके प्रचार में मत पड़ना, उसे धंधा नहीं बनाना।

ज्यादा मत पड़ना ऐसी बातों में, पूरी दुनियाँ दुखी है; सुख उसके भीतर ही पड़ा है परंतु लोग पहुंचना नहीं चाहते हैं उस सुख तक। धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में लोग हराम खाऊं हो गए हैं। वे आध्यात्मिक पुरुषार्थ करके आत्मसुख पाना नहीं चाहते हैं। वे तो साधु संत औलिया से दुआ, तावीज, आशीर्वाद से सुखी हो जाना चाहते हैं।

सबको लोटरी की टिकिट चाहिए और लौटरी लगनी भी चाहिए। ऐसी मानसिकता के दलदल में फंसे हुए समाज के साथ ध्यान क्षेत्र में कार्य करना बहुत कठिन हो गया है।

ऐसे लोगों को कभी कभी किसी करुणावान सिद्ध पुरुष से मदद मिल भी जाती है, बदले में वे लोग प्रचारक बन जाते हैं। प्रचार भीड़ को खींच लाता है। क्योंकि सब दुखी हैं।

भीड़ से अहंकार पुष्ट होता है। वाह वाह होने लगती है चमत्कारों से। मैं कहती हूँ कि चमत्कारों के मायाजाल में पड़कर आपके और अन्य के आध्यात्मिक विकास में रुकावट मत डालना। अपना आध्यात्मिक नुकसान मत होने देना।

सर्व चैतन्य भाव ध्यान में विकास की पराकाष्ठा पर अन्यचेतना के साथ आपकी चेतना के सहज अनुसंधान और प्रवेश भी संभव हैं। हमारे इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। मैंने सुना है कि मंडन मिश्र के साथ शास्त्रार्थ करते हुए आचार्य शंकर के सामने मंडन मिश्र हार गए। फिर मंडन मिश्र की पत्नी ने कहा कि अभी आपकी जीत अधूरी है, मैं मंडन मिश्र की अर्धांगिनी हूँ। आप मेरे साथ शास्त्रार्थ करके जब मुझे हराएं तब आपकी विजय मानी जाएगी।

शास्त्रार्थ शुरु हुआ। मंडन मिश्र की पत्नी ने कुछ सांसारिक प्रश्न पूछने शुरु किए। शंकराचार्य के पास संसार का कोई अनुभव नहीं था, उन्होंने कहा मुझे थोड़ा समय दीजिए। मैं छः महीने के बाद वापस आ रहा हूँ। इसी दौरान काशी नरेश की मृत्यु हुई।

मैंने सुना है कि काशी नरेश के शरीर में उन्होंने प्रवेश किया। क्योंकि नरेश की नाड़ियों में सूक्ष्म प्राण प्रवाह अभी बह रहा था। उसकी चेतना के साथ अनुसंधान करना सरल था।

आचार्य शंकर ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि में समाधि में जा रहा हूँ। छः महीने के बाद समाधि में से बाहर आऊंगा। आप मेरे शरीर को सुरक्षित रखना। उन्होंने अपने सूक्ष्म प्राण से काशी नरेश के मृतः प्राय देह से अनुसंधान जोड़ लिया। प्रवेश कर लिया राजा के पंचमहाभूत में। छः महीने तक संसार की माया का अभ्यास किया, अनुभव लिया। शरीर राजा का था, उसमें चेतना शंकर की बह रही थी। यह सब सुनकर आपको अवश्य आश्चर्य होगा क्योंकि यह आपका विषय नहीं है। आपका अनुभव नहीं है।

अंग्रेजों के जमाने में रेलवे की खोज हुई और भारत में पटरी पर रेलगाड़ियाँ दौड़ने लगीं तब हजारों अनपढ़ देहाती लोग उसे दैवी चमत्कार मानते थे, डरते भी थे, कुछ लोग मरते दम तक ट्रेन में नहीं बैठे।

पैरों से और बैलगाड़ियों से, घोड़े और ऊंटगाडियों के उपरांत भी कोई यांत्रिक चलना भी हो सकता है, इस बात को मानने के लिए वे तैयार नहीं थे। उनके गाँव के पास से जब रेलगाड़ियाँ निकलती थी तब वे धूप दीप करते थे, श्रीफल चढ़ाते थे।

अरबस्तान में जब पहली बार नलों में पानी आया तब लोगों को चमत्कार लगा था। मनुष्य की समझ और अनुभव के बाहर की हर बात उसके लिए एक चमत्कार है।

बरसों पहले राजस्थान के सूरतगढ़ में कई सालों तक बारिश नहीं हुई थी। छोटे छोटे बच्चों ने जन्म के बाद बारिश देखी ही नहीं थी। और एक दिन अचानक उमड़ घुमड़ कर बादल बरस पड़े और ओले भी पड़ने लगे तब बच्चे रो कर, डर कर चिल्लाते हुए घर में छिप गए थे। क्यों ? क्योंकि बात समझ और अनुभव के बाहर की थी।

अरे मैंने मेरी नजरों के सामने देखा है। जब प्रेशर कुकर की खोज हुई तब बहुत सी नारियाँ डरती थीं कुकर का उपयोग करने से। कहती थीं कि कुकर फटता है, आदमी मर जाता है! हाँ, यंत्र को उसकी निरधारित नियम के अनुसार नहीं चलाएंगे तो नुकसान हो सकता है। ऊर्जा तो ऊर्जा है उसका स्वभाव और नियति है विस्फोटित होना। मेरी माता ने घर में कभी कुकर नहीं बसाया। परंतु मैं पैंतीस साल से इस्तेमाल कर रहीं हूँ कुकर का; वह कभी नहीं फटा। यंत्र के पास शक्ति होती है, समझ नहीं होती है। सिर्फ यांत्रिकता होती है, बुद्धि नहीं होती।

मशीन कभी माफ नहीं करती। उसके पास मनुष्य जैसी कोई भावनाएं नहीं होती हैं। हाँ, आजकल संवेदनाशील रोबोट बनाने का काम विश्व के वैज्ञानिक ज़ोर-शोर से कर रहे हैं। परंतु भयभीत भी बहुत हैं। क्योंकि आखिर यंत्र तो यंत्र है। वह तबाही मचा सकता है। क्योंकि वह ध्यान नहीं कर सकता। न ज्ञान में उसका प्रवेश हो सकता है।

भारतीय मनीषी कहते हैं कि यंत्र मंत्र और तंत्र तीनों से ऊर्जा का विस्फोट होता है। कुछ विस्फोट दृश्यमान हैं कुछ अदृश्य। एक साधारण आदमी भी समझ सके ऐसी बात है कि अगर मशीन में प्राण फूंक कर उसके पास से मनुष्य हर काम लेने लगा है तो जो प्राण का निवासी है, जो

आत्मा का अतिवाहक है, जो जीव के निवास के लिए ही कुदरत ने बनाया है, उसमें अपने प्राणों के द्वारा प्रवेश करना असंभव नहीं है।

परंतु यह विद्या आज लुप्त हो रही है। विज्ञान बहुत आगे बढ़ा और ज्ञान अदृश्य हो रहा है। यह विद्या गूढ तो पहले से ही थी परंतु मनुष्य अब उस विद्या से काफी दूर चला गया है।

आज योग विद्या के नाम से केवल आसनों की उठापटक, श्वास प्रश्वास के साथ थोड़ी उल्टी सीधी छेड़ छाड़, बीमारियाँ और दवाईयाँ जुड़ गई हैं।

प्यारे साधको !

परकाया प्रवेश और मुर्दों में प्राण फूंकना ये कोई परिकथा नहीं है। ये भारत के सिद्धों की एक वास्तविक सिद्धी थी। शंकराचार्य के उपरांत गुरु गोरख, दत्तात्रेय और ऐसे अनेक सिद्धों के संदर्भ में भारत के इतिहास में ऐसी अनेक कथाएं मिलती हैं।

परकाया प्रवेश दो प्रकारों से हो सकता है, उसमें से एक मनुष्य के मन में प्रवेश करना और दूसरा तन में प्रवेश करना।

मन तक तो काफी लोग पहुंच सकते हैं, दूसरे के तन में प्रवेश करने में ख़तरा है। ये एक ऐसा प्रयोग है कि अपने घर को असलामत छोड़कर अपरिचित घर में प्रवेश करना। जीवन मुक्त अवस्था की चरम सीमा पर बहुंचे बिना यह संभव नहीं है। महामृत्यु के साक्षात्कार के बिना यह असंभव है। और सभी जीवन मुक्तों के लिए भी संभव नहीं। वह भी प्रेम जैसा है।

प्रेम करने वाला हर युगल लैला–मजनु, शिरी–फराह, या सोहनी–महिवाल नहीं होते। एक शायरी याद आ रही है।

मोहब्बत के लिए कुछ खास दिल मकसूस होते हैं
ये वो नग्मा है जो हर साज पे छेड़ा नहीं जाता।

वैसे ही हर योगी परकाया प्रवेश तक नहीं पहुंच सकता। इस विधि को कुछ खास चेतनाएं ही सिद्ध कर सकती हैं।

मैं ये सब इसलिए स्पष्ट कर रही हूँ कि आद्यशंकराचार्य और हठयोगी, नाथ और सिद्ध संप्रदायों की कथाओं को सुनकर आप आत्मशांति के ध्येय से हटकर तथा प्रयोगों के लालच में पड़कर पथभ्रष्ट न हो जाओ।

ध्यान करते करते अगर शक्ति का विस्फोट हो गया और कुछ विशेष शक्तियाँ बरस गई तो यह बात अलग है। परंतु फलाकांक्षा से अपनी साधना को भ्रष्ट मत होने देना।

आपको केवल विधि में उतरना है। परिणाम की लालच में लक्ष्य न टूटे इसलिए जाग्रत रहना है। आपकी पूर्वसाधना कितनी बलवत्तर है इसपर बहुत सारी बातें निर्भर है।

आचार्य शंकर का जन्म ही मनुष्यता को ज्ञानोन्मुख करने के लिए हुआ था। उसकी पूर्व साधना अनंत थी। सात साल की उम्र में तो उसका प्रबुद्धत्व में प्रवेश हो गया था। और अपनी जननी को "ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या" का बोध कराके बचपन से ही महाभिनिष्क्रमण कर गए थे। उनका अपूर्व सिद्धियों में प्रवेश होना स्वाभाविक है। आज के मनुष्य को आधी जिन्दगी तक तो सच्चे धर्म और अध्यात्म का कोई बोध ही नहीं होता है। दूर दूर तक उसका ध्यान से कोई लेना देना नहीं होता है।

मेरे पास आनेवालों को मैं पूछती हूँ कि पहले कभी ध्यान किया है ? कहीं गए हो ध्यान के लिए ? तब करीब आधे लोग तो कहते हैं कि नहीं, हम तो पहली बार आए हैं।

मैं कहूंगी कि अभी तो आप ध्यान का पता ढूंढ रहे हैं। और सर्वचैतन्य भाव ध्यान विधि के द्वारा सीधा परकाया प्रवेश के प्रयोग करने बैठेंगे तो मुंह के बल गिरेंगे।

शंकर को सिद्धियाँ उपलब्ध हुई थीं वह सहज, स्वाभाविक, सकारण थीं। आपके पास जबतक पूर्व साधना, पूर्व तप, पूर्व संस्कार जैसे कोई सबल कारण नहीं हैं तो उपलब्धियाँ कैसे घटेंगी ?

प्यारे साधको !

मैं इसलिए तो कहती हूँ कि पहले सबकुछ समझना, जाग्रति से सोचना। योगविद्या को एवं समाधि सिद्धि को तथा ध्यान विधियों को बिना सोचे समझे झूठ कहने की घृष्टता भी मत करना। और फल को पा लेने की जल्दबाजी भी मत करना।

केवल प्रयोग में उतरते जाओ। बीज, भूमि और माहौल की गुणात्मकता में तालमेल होगा तो अंकुर प्रस्फुटित हो जाएगा। मेरा काम सिर्फ बीज छिड़कना है आपकी हृदय भूमि पर। मैं माहौल भी दे सकती हूँ ध्यान का, एकांत का, शांति का, और साधना का।

अगर आपने हमारे ध्यानतीर्थ में निवास करके साधना करनी चाही तो यह सब संभव है। फिर भी आपकी भूमि की गुणवत्ता पर बहुत

कुछ निर्भर करता है। ध्यान नकल का विषय नहीं है, उसका संबंध समग्रता से, समर्पण से, तीव्रता से और निरंतरता से है।

मैं तो आपमें सिर्फ ध्यान की संभावना जगा रही हूँ। आचार्य शंकर में संभावना ही संभावना थी। शंकर तो मात्र उसका नाम था परंतु वह कहीं बचा ही न था। वह तो केवल एक पहचान रह गई थी। वहाँ केवल चेतना की एक उच्चतम अवस्था ही घूम फिर रही थी। तो उसके लिए सबकुछ संभव था।

वह कोई आध्यात्मिक प्रयोग के लिए एक खास ध्यान विधि से अपना पूरा शरीर छः महीने तक असालामती में छोड़ सकते थे। आप चाय और तंबाकू जैसी तुच्छ चीजों को दो दिन के लिए भी नहीं छोड़ सकते।

आप कंकड़ पत्थर के मकान की चाबी या तिजोरी की चाबी भी दो घंटे के लिए किसीके हाथ में नहीं सौंप सकते। कहाँ से उपलब्ध होंगी सफलताएं! ऐसे लोग असफलता की शिकायत करें अथवा ध्यान की निंदा करें तो उसका कोई मूल्य नहीं है। उसके प्रति उपेक्षा के सिवाय कुछ मत करना।

आचार्य शंकर ने छः महीने के बाद काशी नरेश के शरीरमें से निकलकर अपने शरीर में प्रवेश किया। और मंडन मिश्र की पत्नी के सारे प्रश्नों के सम्यक उत्तर दिए।

खैर! ज्ञानी पुरुषों के लिए हारजीत कोई खास माइना नहीं रखती परंतु समग्र समाज को अद्वैत भाव के प्रति जगाने के लिए शंकर को गाँव गाँव शहर शहर जाकर पंडितों के साथ शास्त्रार्थ करके अपने मत को सर्वोपरि सिद्ध करना उस समय की अनिवार्य मांग थी।

आज के सत्य चिंतक और रहस्य दृष्टाओं को भी संघर्ष तो करना पड़ता है परंतु फिर भी मैं कह सकती हूँ कि धर्म की गुलामी से लोक मानस काफी मुक्त हो गया है। पांडित्य के स्थान पर सरलता, सहजता और वास्तविकता का आदर करने वाले काफी लोग हैं। धर्म भाषा की पकड़ से मुक्त हो गया है। मनुष्य का मानस स्वतंत्रता की उपासना कर रहा है। जो उसके आध्यात्मिक विकास के लिए सबसे ज्यादा फायदेमंद है। आज का मनुष्य संत के पास से शास्त्रीय प्रमाण नहीं परंतु प्रेम और सरलता चाहता है। अनेक क्षेत्रों में विकास की वजह से मनुष्य के पास सत्य और दंभ को परखने की दृष्टि भी है। कुछ लोग भीड़ से बचकर अपना मार्ग ढूंढने के लिए आ जाते हैं मेरे पास।

प्रिय साधको!

अब समझ लो ध्यान विधि को। विधि कहती है कि मन और शरीर की आसक्तियों से ऊपर उठ जाने वाला देह में रहकर भी विदेही बन जाता है। इस ध्यान विधि के द्वारा आप उस अवस्था तक पहुंच सकते हो।

शरीर और मन के पार जाते जाते अपनी चेतना को विस्तृत करते जाइए। आपकी चेतना विस्तृत हो सकती है ये दृढ भाव करना अनिवार्य है। यह कल्पना नहीं है परंतु परम सत्य है।

आपने ही उसे शरीर और मन के दायरे तक सीमित बनाई रखी है। आ जाओ बाहर उस संकुचित जगत से। विश्व तो विराट है। केवल दमड़ी और चमड़ी की खोज में ही पड़े रहना कोई समझदारी नहीं है। एक कलाकार कला में विस्तृत होता दिखाई देता है। एक वैज्ञानिक विज्ञान में विस्तृत होता दिखाई देता है। वेद व्यास का नाम आपने अवश्य सुना होगा; उसका असल नाम कोई वेद व्यास नहीं था। उसका नाम तो था कृष्ण, द्वीप पर जन्म हुआ था इसलिए कृष्ण द्वैपायन के नाम से प्रसिद्ध हुए।

द्वापर में दो दो समर्थ कृष्ण हुए दोनों अवतार थे। दोनों अनूठे थे, दोनों की पहचान के लिए कुछ समझदारों ने खास व्यवस्था कर ली एक को योगेश्वर कृष्ण कहा, दूसरे को कृष्णद्वैपायन कहा। परंतु यह कृष्ण इतना विस्तृत हुआ सर्जन कार्य में, शास्त्र रचना में, वेदों के विभाग करने में, लोगों को जगाने में और पुराणों की रचना करके ज्ञान, ध्यान और भक्ति की स्थापना करने में कि उसका असल नाम खो गया। बहुत कम लोग उसे कृष्ण द्वैपायन नाम से जानते हैं। परंतु वेद व्यास को पूरी दुनियां जानती है।

वेद व्यास ने अपनी चेतना को शास्त्र सृजन में लगाकर इतनी विस्तृत की कि अगर शास्त्र सर्जक कृष्ण का जन्म नहीं होता तो यादव कुलोत्पन्न श्री कृष्ण को कोई नहीं जानता।

वाल्मीकि ने भी साहित्य सृजन में अपनी चेतना को इतना विस्तृत किया कि अगर ऐसा नहीं होता तो राम को कौन जानता? और संत तुलसी मानस लिखने की प्रेरणा कहा से लेते? ये है चेतना के विस्तृतिकरण का परिणाम।

आप ध्यान के द्वारा विकसित करो अपनी चेतना को। उसे फैलने दो। जो बुद्ध ने की थी, जो महावीर ने की थी, जो गोरख ने की थी, जो लीलापा, खंगपा, सरहपा और तिलोपा ने की थी।

उस चेतना को इतनी विस्तृत होने दो कि आप अन्य के शरीर में अपनी चेतना का अनुभव कर सको। अन्य में स्वयं को देखने लगो, स्वयं का अनुभव जब अन्य में भी होने लगेगा तो द्वैत भाव अपनेआप विसर्जित हो जाएगा। दो होते हुए भी वहाँ सिर्फ एक की ही उपस्थिति रहेगी और

अनेक में भी एक का ही दर्शन होगा। दो मिट जाएगा जहाँ भेद है वहाँ ही मोह माया और युद्ध का अस्तित्व है। दो के मिटने से महाशांति का प्रगटीकरण हो सकता है।

यह ध्यान विधि काम, क्रोध से भर रहे मन के लिए तो विशेष मदद कर पाएगी। सारे प्रश्नों का समाधान आपके भीतर से ही खोज देगी। आप केवल विधि में उतरो, बाकी सब ध्यान देख लेगा। ध्यान परमात्मा जैसा है। आप अपना दायित्व स्वीकार करो एक सच्चे साधक बनकर। बाकी सब वह संभाल लेगा।

साधक ध्यान की चरम सीमा तक पहुंचता है तब वह अन्य में सूक्ष्म रूप से प्रवेश कर सकता है। दूसरे को पढ़ सकता है। अन्य में प्रविष्ट होकर उसे शुभ कार्य के लिए माध्यम बना सकता है। तब अपना शरीर होते हुए भी वह बाधक नहीं बनता। क्योंकि सब सूक्ष्म का खेल है! और प्रत्येक चेतना का वास्तविक स्वरूप परम स्वतंत्र और अविकारी है।

विशाल अर्थ में प्रत्येक चेतना सर्वव्यापी है। छोटे अर्थ में जीव है, विराट अर्थ में ईश्वर है। जो सर्वात्म और अपार है। बूंद और सागर अथवा एक बूंद और दूसरी बूंद का गोत्र तो जल ही है। मूल स्रोत में कोई फर्क नहीं है। उनके परिचय में कोई बाधा नहीं नड़ सकती।

अगर साधक ने जो अपने देह और मन के ऊपर उठने की कला जान ली है तो चेतना के विस्तृतिकरण की प्रक्रिया कठिन नहीं है। और चेतना का विस्तृतिकरण ही भगवतता में प्रवेश है।